आज़ादी का अमृत महोत्सव

Azadi ka Amrit Mahotsav

प्रथम संस्करण

संपादनः

रश्मि संत

(असि0 प्रोफ़ेसर)

इतिहास विभाग

डॉ0 आम्बेडकर राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय

ऊंचाहार, रायबरेली, उ0 प्र0

प्रिंटरः

लक्ष्मी ऑफसेट, गोयल कॉम्प्लेक्स,
संजय गाँधी पुरम, फैज़ाबाद रोड,
लखनऊ, उत्तर प्रदेश
पिनः 226016

प्रकाशन एवं डिज़ाइनः

इंफोकैप्सूल एलएलपी
2/91, विवेक खंड, गोमती नगर,
लखनऊ, उ.प्र.(भारत)।
पिनः 226010

कॉपीराइट © इंफोकैप्सूल एलएलपी

आई एस बी एनः 978–81–951568–9–4

प्रथम संस्करणः **2021**

संपादकः रश्मि संत

मूल्यः **₹ 750**

Copyright

All rights are reserved. No part of this publication may be reproduced, stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without prior permission of InfoCapsule LLP.

Disclaimer

Statements of fact and opinion in the articles in this book are those of the respective authors and contributors and not of the Editor or the InfoCapsule LLP. Neither InfoCapsule LLP nor the Editor make any representation, express or implied, in respect of the accuracy of the material in this book and cannot accept any legal responsibility or liability for any errors or omissions that may be made. The reader should make his/her own evaluation as to the appropriateness or otherwise of any experimental technique described.

आज़ादी का अमृत महोत्सव

(Azadi ka Amrit Mahotsav)

प्रथम संस्करण

रश्मि संत

कॉपीराइट © 2021 इंफोकैप्सूल एलएलपी

सर्वाधिकार सुरक्षित

आई एस बी एनः 978–81–951568–9–4

प्राक्कथन

प्रो0 रूदल यादव

भारत की आजादी का संघर्ष 1857 से लेकर 1947 तक लगभग 90 वर्षों तक चला। इसमें भारत के न जाने कितने वीर सपूत शहीद हुए। स्वतंत्रता संग्राम की पावन स्मृति में इस वर्ष भारत सरकार द्वारा 'आजादी का अमृत महोत्सव' मनाया जा रहा है। स्वतंत्रता संग्राम के अमर शहीदों को

नमन करते हुए इस अवसर पर हमें थोड़ा ठहर कर विचार करने की आवश्यकता है कि विश्वगुरू कहे जाने वाले इस अखण्ड भारत में जब सर्वोत्तम मस्तिष्क और अजेय बाहुबल का साम्राज्य था तथा यहां की गतिविधियों पर सर्वोत्तम वाणिज्यिक बुद्धि काबिज थी तब भारत आखिर गुलाम क्यों हो गया। स्वतंत्रता से पूर्व वैसे तो भारत लगभग एक हजार वर्षों तक राजनीतिक उथल–पुथल का शिकार रहा, जिसमें तुर्क, मुगल और अंग्रेजों का शासन रहा। तुर्क और मुगल तो भारतीय समाज में घुलमिल कर भारतीय हो गए पर अंग्रेजों ने भारत को सदैव अपना उपनिवेश बनाए रखकर शोषण किया। ढाई सौ वर्षों तक भारतीयों के गुलाम रहने के कारणों पर विचार करने से स्पष्ट हो जाता है कि किसी भी देश को समाज के चंद लोग चाहें वे कितने भी योग्य क्यों न हों सुरक्षित नहीं रख सकते, यदि सम्पूर्ण समाज अपनी हिस्सेदारी न निभाए। इस तथ्य को महात्मा गांधी ने समझा और देश की आजादी के संघर्ष में सम्पूर्ण भारतीय समाज को शामिल किया।

'ईश्वर अल्लाह तेरो नाम' कहकर उन्होंने हिन्दू मुसलमान को आजादी के संघर्ष में जोड़ा और आगे चलकर 'हिन्दू मुस्लिम सिख ईसाई आपस में सब भाई–भाई' कहकर सम्पूर्ण भारतीय समाज को भारत की स्वतंत्रता के लिए प्रेरित किया। इस संग्राम में चंद्र शेखर आजाद, भगत सिंह, दादा भाई नौरोजी, मौलाना आजाद, मातादीन बाल्मीकि जैसे विभिन्न धर्मों और सम्प्रदायों के लोगों ने अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। महात्मा गांधी ही वह व्यक्ति थे जिन्होंने भारतीय समाज के कमजोर से कमजोर व्यक्ति को 'उपवास' की उपयोगिता का पाठ पढ़ाकर इतना साहसी बना दिया कि वह अंग्रेजों की तोप के सामने अड़कर खड़ा हो गया। परिणाम यह हुआ कि एक ऐसी ताकत जिसके साम्राज्य में सूरज अस्त नहीं होता था, वह भी भारत छोड़ने को मजबूर हो गया और भारत आजाद हो गया। आज भी यदि हम भारत को एक समृद्ध राष्ट्र के रूप में विकसित करना चाहते है तो हमें सम्पूर्ण भरतीयता को एकजुट करना होगा, एक स्वर देना होगा तभी यह अमृत महोत्सव अपने मूल दर्शन को प्राप्त कर सकेगा।

प्रो0 श्रीमती रश्मि संत, विभागाध्यक्ष, इतिहास, डॉ0 अम्बेडकर राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ऊँचाहार–रायबरेली, द्वारा सम्पादित इस पुस्तक में आजादी के उस संघर्ष का स्मरण तो है ही साथ ही उस सम्पूर्ण भारतीय जिजीविषा को समेटने का प्रयास भी किया गया है जिसमें साहित्य, कला और लोकजीवन का संगम है। मैं इस पुस्तक के सफल सम्पादन के लिए उन्हें बधाई देता हूं और कामना करता हूं कि वे भविष्य में भी अपनी सृजनात्मक सक्रिय भूमिका का निर्वहन करती रहेंगी। इस पुस्तक में सम्मिलित सभी सुधीजन उनके शोध पत्रों के लिए बधाई के पात्र हैं। सभी को ढेर सारी शुभकामनाएं।

प्रो0 रूदल यादव
प्राचार्य
डॉ0 अम्बेडकर राजकीय स्नातकोत्तर
महाविद्यालय ऊँचाहार–रायबरेली

प्राक्कथन

डॉ0 अनिल कुमार मिश्र

मुझे यह जानकर अतीव प्रसन्नता हुई कि मेरी प्रिय पुत्रीवत् सहकर्मी डॉ0 रश्मि सन्त के निर्देशन में 'आजादी का अमृत महोत्सव' विषय पर एक शोधग्रन्थ का प्रकाशन किया जा रहा है। यद्यपि मेरा अपना विषय वाणिज्य रहा है, तथापि अपने साथी प्राध्यापकों के साथ समय पर होती चर्चा ने मुझे अन्य विषयों की ओर भी आकर्षित किया,

जिनमें इतिहास उन प्रमुख विषयों में से एक है जिन पर साथियों से चर्चा भी होती रही एवं जिनकी पुस्तकों पर भी दृष्टिपात का सुअवसर प्राप्त हुआ।

इस सम्बन्ध में मुझे विंस्टन चर्चिल (द्वितीय विश्वयुद्ध) के समय ब्रिटिश प्रधानमंत्री) का एक संस्मरण याद आ रहा है (जिन्हें सन् 2000 में बी0बी0सी0 के एक सर्वेक्षण में 20वीं सदी का विश्व का महानतम् व्यक्ति चुना गया) इस सर्वेक्षण में उन्होंने अन्य महापुरूषों के अतिरिक्त महात्मा गाँधी तथा मार्टिन लूथर किंग को पीछे छोड़ा। चर्चिल को एक बार एक विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोह में आमन्त्रित किया गया। वहां उनसे पत्रकारों ने पूछा कि आपने रक्षा व्यय में वृद्धि के कारण शिक्षा विभाग के अतिरिक्त अन्य विभागों के बजट में कटौती की, ऐसा करने के क्या कारण हैं? चर्चिल ने उत्तर दिया कि यह महायुद्ध हमें हर हाल में हर कीमत पर जीतना है, यह भी तय है कि यह युद्ध लम्बा खिंचेगा और उस स्थिति में हमें सुयोग्य युवाओं की आवश्यकता निरन्तर पड़ेगी। यदि

हम ऐसा करने में असमर्थ रहे तो निश्चय ही युद्ध में पराजित होंगे याद रहे कि जब तक सैनिक युद्ध में लड़ता है तो उसके पीछे कम से कम 100 (सौ) अन्य व्यक्तियों का परिश्रम शामिल होता है।

यदि उनमें से कोई भी अयोग्य या अक्षम हुआ तो सैनिक के पास निम्न स्तरीय सामग्री पहुंचेगी और परिणाम पराजय ही होगा इसीलिये शिक्षा विभाग के बजट में कटौती नहीं की जा रही है। वहीं पर उनसे विद्यार्थियों ने प्रश्न किया कि आप किस विषय को सर्वाधिक महत्वपूर्ण मानते हैं? उन्होंने पहले तो प्रश्न को टालना चाहा और कहा कि सभी विषय महत्वपूर्ण हैं, राष्ट्र को सभी क्षेत्रों में सुयोग्य युवा चाहिये किन्तु विद्यार्थी निरन्तर पूछते रहे कि आप अपनी पसन्द का कोई एक विषय बताइये। पत्रकार भी विद्यार्थियों के साथ हो गये। बहुत जोर देने पर चर्चिल ने इतिहास का नाम लिया, कारण यह बताया कि इतिहास से विमुख होने पर हम अपने राष्ट्रीय गौरव को भूल जायेंगे और इतिहास में हुई गलतियों से सबक नही सीखेंगे वही

गलतियां दोहराते चले जायेंगे और ऐसा ही चलता रहा तो शीघ्र ही नष्ट हो जायेंगे।

आज भारत राष्ट्र भी ऐसे ही मोड़ पर खड़ा है। कुछ स्वनाम धन्य इतिहासकारों की एकांगी दृष्टि से रचित इतिहास हमें सम्यक ऐतिहासिक ज्ञान उपलब्ध नहीं करा सका है। ऐसी दशा में इतिहास के शिक्षकों एवं शोधार्थियों का उत्तरदायित्व और अधिक बढ़ जाता है और राष्ट्र उनसे यह आशा करता है कि वे लगन, परिश्रम एवं निष्ठा से निरन्तर परिश्रम करके, न केवल इतिहास के विद्यार्थियों को अपितु जनसामान्य को सम्यक ऐतिहासिक पठन सामग्री उपलब्ध करायें।

गर्व का विषय है कि उत्तर प्रदेश में विभिन्न राजकीय महाविद्यालयों में इतिहास विषय में सुयोग्य एवं परिश्रमी प्राध्यापकगण कार्यरत है। डॉ0 अम्बेडकर राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ऊँचाहार–रायबरेली में कार्यरत डॉ0 रश्मि संत के कुशल निर्देशन में 'आजादी का अमृत महोत्सव'

विषय पर शोधग्रन्थ के प्रकाशन से उक्त उत्तरदायित्व का कुछ अंश अवश्य पूर्ण होगा। साथ ही कुछ अल्पज्ञात स्वंतन्त्रता सेनानियों के बारें में हमारी जानकारी में वृद्धि होगी।

आशा है कि महाविद्यालय प्राचार्य डॉ0 रूदल यादव के संरक्षण में डॉ0 रश्मि सन्त के एवं महाविद्यालय की पूरी टीम हमारे इस विश्वास पर खरी उतरेगी। ईश्वर से प्रार्थना है कि उन्हें सफलता प्रदान करें।

09.12.2021

(डॉ0 अनिल कुमार मिश्र)
सेवानिवृत्त क्षेत्रीय उच्च शिक्षा अधिकारी
कानपुर
पूर्व प्राचार्य– फ0अ0अ0राज0स्ना0 महा.
विद्यालय, सीतापुर,
पं0 दीनदयाल उपाध्याय राजकीय महा.
विद्यालय तिलहर, शाँहजहाँपुर

संपादकीय

भारत को ब्रिटिश साम्राज्य से आजाद हुए आगामी 15 अगस्त 2022 को 75 वर्ष पूर्ण हो जायेंगे। आजादी के इस हीरक जयंती के अवसर को भारत सरकार ''आजादी का अमृत महोत्सव'' के रूप में मना रही है जिसकी शुरुआत गाँधी की दांडी यात्रा को याद करते हुए 12 मार्च 2021 को की गयी थी। यह महोत्सव आजादी के 75 साल पूरे होने के एक वर्ष पहले से और एक वर्ष बाद तक 75 हफ्ते मनाया जायेगा। आजादी के अमृत महोत्सव मनाये जाने का मूल उद्देश्य यही है कि हम समस्त देशवासी स्वतंत्रता के महत्व को समझते हुए स्वतंत्रता सेनानियों के जीवन मूल्यों से प्रेरणा प्राप्त

कर जोश और उमंग से भरे, एक ऐसे भारत का निर्माण करें जो सदैव प्रगतिशील रहे। इस अभियान के तहत देश भर में प्रति दिन सैकड़ों कार्यक्रम आयोजित किये जा रहे हैं और अब तक लगभग साढ़े सात हजार कार्यक्रम आयोजित हो चुके हैं। भारत सरकार की इस पहल से प्रेरित मैं 'आजादी का अमृत महोत्सव' नाम से एक पुस्तक संपादित कर रही हूँ जिसमें संकलित प्रबुद्ध विचारकों के वैविध्यपूर्ण विचार भारतीय जनमानस को जागृत करने में निश्चित तौर पर कामयाब होंगे।

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के लंबे इतिहास में देशव्यापी आंदोलन का व्यवस्थित स्वरूप 1857 की क्रांति से दिखाई देता है। मोटे तौर पर देखें तो इस संघर्ष की शुरुआत बैरकपुर छावनी में तैनात बंगाल नेटिव इन्फैंट्री की 34वीं रेजिमेंट के सिपाही मंगल पाण्डेय के 29 मार्च 1857 में किये गए विद्रोह से होती है। इस विद्रोह की गूँज दिल्ली के करीब स्थित मेरठ छावनी के सिपाहियों तक पहुंचती है तो यह विद्रोह शीघ्र ही क्रांति का रूप ले लेता है।

देखते ही देखते अंग्रेजों के जुल्मों के खिलाफ नाना साहब, बहादुर शाह, तात्या टोपे, रानी लक्ष्मीबाई, कुँवर सिंह आदि के नेतृत्व में यह क्रांति पूरे उत्तर भारत में फैल जाती है। भले ही अंग्रेजों ने अपनी दमनकारी कूटनीति से आजादी की इस प्रथम क्रांति को कुचल दिया हो पर इससे राष्ट्रभक्तों के दिलों में राष्ट्रवाद का जो बीज उपजा उसे वे कभी नहीं कुचल पाए। तब से 1947 में स्वतंत्रता प्राप्ति तक राष्ट्रवादियों ने अंग्रेजों के खिलाफ विविध स्तर पर इतने अधिक आंदोलन किये कि उन आंदोलनों से पस्त होकर आखिर अंग्रेजों को भारत छोड़ना ही पड़ा।

भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की नींव हिलाने में भारतीय किसानों के आंदोलनों का बड़ा योगदान रहा। कृषक आंदोलनों में 1859–62 का नील विद्रोह और 1870–80 के पाबना विद्रोह ने अंग्रेजों को यह जता दिया कि भारतीय किसान अब किसी भी प्रकार का शोषण बर्दाश्त नहीं करेंगे। 1917 में बिहार के चंपारण में नील की खेती के लिए मजबूर किसानों ने

राजकुमार शुक्ल नामक किसान की प्रेरणा से अंग्रेजी सरकार के खिलाफ सत्याग्रह छेड़ दिया। चंपारण पहुंचकर गाँधी ने इस सत्याग्रह का नेतृत्व किया और किसानों को नील की खेती से छुटकारा दिलाने में अहम भूमिका निभाई। यहीं से शुरू हुआ गाँधीजी के सत्याग्रह का सफर जो भारत की आजादी तक अनवरत चलता रहा।

19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में भारत में एक ऐसे संगठन की बुनियाद पड़ी जिसने दादा भाई नौरोजी, बिपिन चंद्र पाल, बाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपत राय, गोपाल कृष्ण गोखले, सुरेंद्रनाथ बनर्जी आदि जैसी महान विभूतियों को जन्म दिया। यह मंच था 'भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस' का। 28 दिसंबर 1885 को मुंबई के गोकुलदास तेजपाल संस्कृत महाविद्यालय में 72 प्रतिनिधियों की उपस्थिति में प्रतिस्थापित इस संगठन ने भारत की आजादी तक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। यह भूमिका चाहे नरम दल के प्रार्थना पत्रों और स्मृति पत्रों के आधार पर निभाई गई हो या गरम दल द्वारा छेड़े

गए आंदोलनों के आधार पर। कांग्रेस के कार्य को और अधिक प्रगति दी महात्मा गांधी जी ने। गांधीजी ने अपने आंदोलनों के जरिए सामान्य जनमानस को इस प्रकार जोड़ा कि घरेलू स्त्रियां भी ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ बगावत के लिए घर से निकल पड़ीं।

देश की आजादी क्रांतिकारियों के योगदान के बिना संभव नहीं थी। 1896–97 में पूना के 'व्यायाम मंडल' से शुरू क्रांतिकारी आंदोलन का इतिहास सुभाष चंद्र बोस की आजाद हिंद फौज की स्थापना तक जोश, उमंग और शहादत से लबरेज है। भगत सिंह और बटुकेश्वर दत्त द्वारा 1929 में केंद्रीय विधान परिषद में बम फेंकना स्वतंत्रता के लिए क्रांतिकारियों की छटपटाहट का उदाहरण है। 1925 का काकोरी कांड हो या 1928 का लाहौर कांड, क्रांतिकारियों ने यह दिखा दिया कि ब्रिटिश सरकार के दमन चक्र से वे डरने वाले नहीं हैं। सर पर कफन बांध कर उधम सिंह ने जिस तरह से जर्नल डायर, जिसने 1919 में जलियांवाला बाग में हजारों मासूमों को मौत के घाट उतार दिया, को उन्हीं के देश और उन्हीं के

लोगों के बीच सरे आम गोली मार दी, वह साहस वाकई देश प्रेम में पागल व्यक्ति ही दिखा सकता है। 1946 में मुंबई के तलवार नामक जहाज के नौसैनिक विद्रोह ने यह स्पष्ट कर दिया कि अंग्रेज अब ज्यादा दिन भारत में राज नहीं कर सकेंगे।

आजादी के संघर्ष की दास्तान महिलाओं के जिक्र के बिना अधूरी है। अट्ठारह सौ सत्तावन की क्रांति में रानी लक्ष्मीबाई, झलकारी बाई, उदा देवी आदि ने जिस प्रकार से अंग्रेजी सेना का सामना किया वह चकित कर देने वाला था। गांधीजी के आंदोलनों में कमला नेहरू, मीराबेन, कस्तूरबा गांधी आदि ने बड़ी बहादुरी से महिला मोर्चा की कमान संभाली। लक्ष्मी सहगल, रानी गौडीनल्यू ने यह सिद्ध कर दिया कि वह भी वक्त आने पर वीरता, निर्भीकता और कुशलता से देश के लिए शत्रुओं से लड़ सकती हैं।

स्वतंत्रता संघर्ष के इतिहास में अंग्रेजों के अत्याचारों को उजागर करने का कार्य किया भारतीय प्रेस ने। यह एक ऐसा प्रभावशाली हथियार बनकर

उभरा जिसने भारतीयों में राष्ट्रीयता को चरम पर पहुंचा दिया। दीनबंधु के प्रसिद्ध नाटक 'नील दर्पण' में किसानों पर होने वाले अत्याचारों और उनकी दुर्दशा का वर्णन रोंगटे खड़े कर देने वाला है। भारत के वयोवृद्ध पुरुष दादा भाई नौरोजी ने अपनी पुस्तक 'पॉवर्टी एंड अनब्रिटिश रूल इन इंडिया' में भारत की दयनीय आर्थिक स्थिति की ओर विश्व का ध्यान आकृष्ट किया। 'मराठा','केसरी','वंदे मातरम' जैसी पत्रिका और 'संवाद कौमुदी', 'अमृत बाजार', 'उद्दंड मार्तंड' जैसे समाचार पत्रों ने लोगों में जोश का संचार किया।

इन पुस्तकों के साथ भारत के महान नेताओं के नारे जैसे बाल गंगाधर तिलक का–'स्वराज मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है, मैं इसे लेकर रहूँगा', सुभाष चंद्र बोस का– 'तुम मुझे खून दो मैं तुम्हें आजादी दूंगा', गांधी जी का – 'अंग्रेजों भारत छोड़ो', भगत सिंह का–'इंकलाब जिंदाबाद' ऐसे नारे थे, जिसका उच्चारण आज भी दिल में जोश उत्पन्न करता है। लोगों को जागरूक करने और दकियानूसी सोच से उबरने में

पुनर्जागरण के पिता राजा राममोहन राय और निम्न वर्ग के उद्धारक डॉ भीमराव अंबेडकर ने जो संघर्ष किया, वास्तव में अतुलनीय है।

भारत की आजादी को जिंदा रखने और देश प्रेम की भावना उत्पन्न करने में भारतीय सिनेमा महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहा है। सुर साम्राज्ञी लता मंगेशकर जी द्वारा गाया गया गीत –'ऐ मेरे वतन के लोगों........' आज भी देश के लिए समर्पित शहीदों के प्रति हमारी आंखें गर्व से नम कर देता है। वर्तमान समय फिल्म 'केसरी' का गीत 'तेरी मिट्टी में मिल जावां .....'जो कि मनोज मुन्तशिर द्वारा लिखित और बी प्राक द्वारा गाया गया है, शरीर में सिहरन उत्पन्न करता है। इसी प्रकार 1965 में भगत सिंह पर आधारित फिल्म 'शहीद', 1997 की फिल्म 'बॉर्डर' 2012 की फिल्म' चिटगॉन्ग', 2021 की 'सरदार उधम' आदि कुछ ऐसी फिल्में हैं जो आजादी के समय का आक्रोश दर्द और कुछ कर गुजरने की ख्वाहिश हमारे भीतर भी उत्पन्न कर देती हैं।

यह हमारी खुशनसीबी है कि हम आजाद भारत में रह रहे हैं। इस आजादी को अमृत महोत्सव के रूप में मनाना बड़े गर्व का विषय है क्योंकि यह उन 90 वर्षों के प्रयासों का परिणाम है जो 1857 से 1947 तक अनवरत चलते रहे। यह परिणाम है उन समस्त आंदोलनों का जो किसानों से लेकर राजाओं द्वारा किए गये। यह परिणाम है उन क्रांतिकारियों की शहादत का जिन्होंने देश को आजाद कराने में अपने प्राण न्योछावर कर दिए। यह परिणाम है भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की नीतियों का जिन्होंने अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध राजनीतिक लड़ाई लड़ी। यह परिणाम है गांधी जी के अहिंसात्मक मार्ग का जिसमें समाज का हर तबका और वर्ग शामिल हुआ। यह परिणाम है उन महान नेताओं की कुर्बानी का जिन्होंने दिन रात अपनी जवानी देश को स्वतंत्र कराने में गुजार दी। तो आज वक्त है फिर से स्वतंत्रता संग्राम के जुझारू योद्धाओं को नमन करने का जिन्होंने हमारे भविष्य को स्वतंत्र सांसें देने के लिए अपने वर्तमान की सांसों को कांटो भरे संघर्ष में गुजारा। मैं उन्हें भी नमन करना चाहूंगी जिन्होंने देश की आजादी के लिए अपने प्राणों की

आहुति तो दी मगर उनके नाम अभी तक इतिहास में कहीं गुम हैं।

अंत में यही कहना चाहूंगी कि 1757 के प्लासी युद्ध के बाद से अंग्रेजों ने जिस प्रकार से भारत में अपने पैर पसारना शुरू किया और धीरे–धीरे अंग्रेजी शासन की जड़ें मजबूत कीं उसे उखाड़ फेंकने में भारतीय सपूतों ने ऐसा कठोर संघर्ष कि भारत की धरती भी नाज करती है कि उसके आँचल ने ऐसे वीरों को जन्म दिया। आज जरूरत इस बात की है कि हम महान नायकों के नैतिक सिद्धांतों को सदा जीवित रखे हैं और आजाद देश की जो कल्पना उन्होंने की थी उसे साकार करते हुए भारत को नई ऊंचाइयों पर ले जाएं। तभी अमृत के रूप में मिली इस आजादी का महोत्सव सार्थक होगा।

रश्मि संत
असि0 प्रोफेसर– इतिहास
डॉ0 अम्बेडकर राजकीय स्नातकोत्तर
महाविद्यालय ऊंचाहार, रायबरेली।

विषय–वस्तु

क्र0सं0	विषय	पृष्ठ सं0
1	1857 का विद्रोहः क्या यह प्रथम राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम था?	2
2	1857 प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम में दलित वर्ग के योगदान का ऐतिहासिक मूल्याँकन	22
3	1857 का महासमर एवं सिनेमा	42
4	आजादी की गुमनाम वीरांगना–वेलु नच्चियार	62
5	आजादी के लिए कृषकों के विद्रोह और आन्दोलन	70
6	उग्रवादी विचारधारा राष्ट्रीय आंदोलन का बदलता स्वरूप	84
7	आजादी के लिए क्रांतिकारी कदम	96

8	काकोरी ट्रेन एक्शन	122
9	सत्याग्रही जतीन्द्र नाथ दास	132
10	नेता जी सुभाषचन्द्र बोस	144
11	आजादी का अमृत महोत्सव : गांधी जी के विचारों के संदर्भ में	154
12	महात्मा गाँधी एवं सत्याग्रह	170
13	महात्मा गाँधी राष्ट्रीय आंदोलन का एक अध्याय	188
14	हिन्दी कविता में स्वाधीनता आंदोलन की अभिव्यक्ति	212
15	आजादी में प्रेस की भूमिका	252
16	भारतीय वैज्ञानिकों का देश की स्वतंत्रता में योगदान	262
17	स्वतन्त्रता प्राप्ति में महिलाओं की भूमिका	278

18	Untold story of 1857	300
19	Contribution of Fearless English and Vernacular Journalism in Indian Freedom Struggle and Social Justice	324
20	Kanthapura: A Real Depiction of Gandhian Philosophy and Thought	354
21	Indian Independence and the Woman question: Tracing the trajectory of Indian Feminism through the lens of literature	374
22	Jagadish Chandra Bose: A Pioneer Scientist in pre-independent India	404

ISBN: 978-81-951568-9-4

1857 का विद्रोह: क्या यह प्रथम राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम था?

डा० आयषा फ़ातमी

एसो० प्रो० – प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व विभाग

नारी शिक्षा निकेतन स्नातकोत्तर महाविद्यालय, लखनऊ

इतिहास के पुनर्निर्माण में ऐतिहासिक तथ्यों के साथ–साथ इतिहासकार के व्यक्तिगत दृष्टिकोण के सम्मिलन के कारण घटनाओं के प्रस्तुतीकरण में मतवैभिन्न

होना स्वाभाविक है। इतिहास की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना 1857 की क्रान्ति (मानचित्र संलग्न) है, जिसके स्वरूप तथा चरित्र के विषय में विद्वानों तथा इतिहासकारों में परस्पर मतभेद है। इसी कारण इस क्रान्ति का स्वरूप आधुनिक इतिहास के लिये एक पहेली बन गया है।

इंग्लैंण्ड के रूढ़िवादी दल के प्रमुख नेता बेंज़ामिन डिज़रैली ने जुलाई 1857 में हाउस ऑफ़ कामन्स में इसे एक राष्ट्रीय विद्रोह[1] की संज्ञा दी गयी। तत्कालीन अंग्रेज़ इतिहासकार चार्ल्स बाल यद्यपि इसे एक सैनिक विद्रोह मानते हैं, किन्तु इस विद्रोह में उन्हें भारतीयों की स्वत़ंत्रता का संघर्ष दिखायी दिया।[2] कार्ल मार्क्स प्रथम यूरोपियन विद्वान थे, जिन्होंने 1857 की क्रान्ति को प्रथम स्वाधीनता आंदोलन[3] कहा। भारतीय विद्वानों में सर्वप्रथम वीर सावरकर द्वारा इसे 'भारत का प्रथम स्वाधीनता संग्राम[4] माना गया है।

देश के प्रथम प्रधानमंत्री पं० जवाहर लाल नेहरू ने 1857 की क्रांन्ति के लिये 'प्रथम स्वतंत्रता संग्राम' शब्द प्रयुक्त करने पर बल दिया। यही शब्द भारत सरकार द्वारा भी ग्रहण कर लिया गया,[5] परन्तु विद्वानों में 1857 की क्रांन्ति को प्रथम राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन मानने के संबंध में घोर मतभेद है। एस० बी० चौधरी, ईश्वरी प्रसाद, रामविलास, अशोक मेहता, प्रकाश करात, इंदर मलहोत्रा आदि इसके पक्ष में हैं, जबकि कुछ अंग्रेज़ी इतिहासकारों यथा कि मालेसन, ट्रैवेलियन, लारेन्स, होम्स एवं कुछ भारतीय विद्वानों जैसे आर० सी० मजूमदार, यदुनाथ सरकार, सुरेन्द्रनाथ सेन, एस० मुथैया, एल० आर० जगदीसन एवं गण्डसिंह आादि इसे भारत का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम मानने के पक्ष मे नहीं हैं।

प्रस्तुत शोधपत्र में 1857 की क्रान्ति का वास्तविक स्वरूप जानने के लिये उपर्युक्त विवाद **"क्या यह प्रथम राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम था?** के प्रत्येक पक्ष का पृथक–पृथक विश्लेषण विभिन्न

विद्वानों के विचारों के आलोक में करने का प्रयास किया जायेगा, यथा ——

1. क्या यह स्वतंत्रता संग्राम था ?

2. क्या इसका स्वरूप राष्ट्रीय था ?

3. क्या यह स्वतंत्रता हेतु प्रथम प्रयास था ?

क्या यह स्वतंत्रता संग्राम था?

कुछ विद्वान इस क्रांन्ति को स्वतंत्रता हेतु किया गया प्रयास नहीं मानते हैं। मजूमदार महोदय के अनुसार, विद्रोह ने भिन्न भिन्न स्थानों पर भिन्न स्वरूप धारण किया जिसमें कालान्तर में कुछ असंतुष्ट व्यक्ति भी गड़बड़ी का लाभ उठाकर सम्मिलित हो गये। यह मुख्यतः सैनिक विद्रोह था जिसकी लगभग वही शिकायतें थीं जो पहले हो चुके सैनिक विप्लवों की थी। वे कहते हैं ''1857 के असैनिक विद्रोह को हम स्वतंत्रता संग्राम तभी कह सकतें हैं यदि हम लोग इसका अर्थ अंग्रेज़ों के विरुद्ध एक छोटा—सा संघर्ष मान लें, परन्तु उस

अवस्था में तो पिण्डारियों के अंग्रेज़ों के विरुद्ध संघर्ष अथवा वहाबियों के सिक्खों के विरुद्ध संघर्ष को भी ऐसा ही स्वीकार करना पड़ेगा। जो इसको इस रूप में मानते हैं उन्हें यह देखना होगा कि 1857 के विद्रोही किस सीमा तक आर्थिक अथवा धार्मिक उद्देश्यों से प्रेरित थे जिन प्रेरणाओं से पिण्डारी अथवा वहाबी प्रेरित थे तथा किस सीमा तक वे निर्लिप्त भावना तथा देशभक्ति से प्रेरित हो देश को विदेशी बंधन से मुक्त कराना चाहते थे। इक्का दुक्का उदाहरणों को छोड़कर अभी तक कोई ऐसे तथ्य सामने नहीं आये जिससे यह सिद्ध हो सके कि लोगों के विद्रोह का मुख्य उद्देश्य विदेशी बंधन से मुक्ति पाना था।'[6] गंण्ड सिंह मानते हैं कि सैनिकों के व्यवहार में कुछ भी ऐसा नहीं था जिससे यह विश्वास हो कि वे देश प्रेम की भावना से प्रेरित थे, अथवा अंग्रेज़ों से देश को स्वतंत्रता दिलाने हेतु संघर्ष कर रहे थे।[7]

विद्रोह को स्वतंत्रता संग्राम मानने वाले विद्वानों के विचार में यह विद्रोह देश के प्रत्येक वर्ग

के सदस्यों की भागीदारी का परिणाम था जो विदेशी सरकार के अत्याचारों से मुक्त होना चाहते थे। यद्यपि डा० सेन इस विद्रोह को राष्ट्रीय नहीं मानते हैं परन्तु उनका मानना है कि ''सैनिक विप्लव विद्रोह के रूप में प्रारंभ हुआ और इसने उस समय राजनीतिक रूप धारण कर लिया जब विद्रोहियों ने अपने आपको दिल्ली के राजा के अधीन होने की घोषणा की जो युद्ध धर्मरक्षा युद्ध के रूप में प्रारंभ हुआ था, उसने शीघ्र ही स्वतंत्रता संग्राम का रूप धारण कर लिया। इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि विद्रोही विदेशी सरकार को समाप्त करना चाहते थे।''[8] 1857 का विद्रोह अंग्रेज़ों के खिलाफ़ सैनिकों का खुला विद्रोह था। इस संघर्ष में आम जनता के साथ बहुत से असंतुष्ट राजा और तालुकेदारों ने भी विद्रोह की मशाल थाम ली। राजराघव कहते हैं—'' जिन क्षेत्रो पर से अंग्रेज़ों का शासन समाप्त हो गया, वहां अंग्रेज़ शासन के सारे चिन्ह मिटा दिये गये। सैनिकों ने विजित इलाकों को अपने हाथों में नहीं लिया वरन् उसे आम जनता

तथा प्रतिनिधियों के हाथों सौंप दिया गया।[9] इससे एक बात स्पष्ट होती है कि यह एक सैनिक विद्रोह मात्र न होकर एक जन विद्रोह था, जिसका उद्‌देश्य भारत से विदेशी सत्ता का उन्मूलन कर भारतीय शासन की पुनः स्थापना करना था। एस० बी० चौधरी महोदय भी इस विद्रोह को विदेशी शक्ति को भगाने का प्रयास मानते हैं।[10]

क्या इस विद्रोह का स्वरूप राष्ट्रीय था ?

1857 के विद्रोह को राष्ट्रीय न मानने वाले विद्वानों में डा०सेन, डा० मजूमदार, तथा डा० गण्ड सिंह प्रमुख हैं। डा० सेन का मत है कि उन्नीसवीं शती के पूर्वार्द्ध में भारत केवल एक भौगोलिक कथन ही था। 1857 में बंगालियों, पंजाबियों, महाराष्ट्रियों तथा मद्रासियों ने कभी यह नहीं अनुभव किया कि वे एक राष्ट्र के सदस्य हैं। विद्रोह के नेता राष्ट्रीय नेता नहीं थे।[11] दिल्ली के सम्राट बहादुर शाह का आंदोलनकारियों पर कोई प्रत्यक्ष नियंत्रण नहीं था।[12] डा० सेन के अनुसार विद्रोह को दबाने के लिये स्वयं

भारतीय सैनिकों की भारी संख्या ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।[13] मजूमदार कहते हैं कि अनेक धार्मिक, जातिगत तथा क्षेत्रगत कारणों से विद्रोह ने उ० प्र० के कुछ भागों में साम्प्रदायिक रूप ग्रहण कर लिया था।[14] यदुनाथ सरकार[15] तथा डा०, गण्ड सिंह भी इस विद्रोह में कुछ राष्ट्रीय नहीं देखते हैं।[16]

क्रान्ति के राष्ट्रीय स्वरूप के संबंध में डिजरैली का विचार महत्वपूर्ण बन जाता है––''यह एक राष्ट्रीय विद्रोह था, यह विद्रोह एक आकस्मिक प्रेरणा नहीं था अपितु एक सचेत संयोग का परिणाम था जो अवसर की प्रतीक्षा में थे। यदि साम्राज्य का उत्थान और पतन तथा चर्बी वाले कारतूस के मामले नहीं होते तो ऐसे विद्रोह उचित और पर्याप्त कारणों के एकत्रित होने से होते हैं।[17] यह सत्य है कि ब्रिटिश शासन इस विद्रोह को कुचलने में समर्थ रहा, किन्तु भारतीयों की पनपती राष्ट्रवादी भावना का पता उन्हें चल गया। 1860 में अंग्रेज़ कथा लेखक थामस लोव (Thomas Lowe) ने कहा–– ''इस समय भारत मे रहना

ज्वालामुखी के मुख पर खड़े रहना है.................... बाल हत्यारे राजपूत, हठधर्मी ब्राह्मण, धर्मोन्मत मुसलमान सभी एक कारण से एकजुट हो गये हैं।''[18] यद्यपि विद्रोह के कारण भिन्न भिन्न थे, किन्तु अधिकतर विद्रोहियों ने मुग़ल सम्राट बहादुरशाह को अपना सर्वमान्य नेता चुना और इस विद्रोह को व्यक्तिगत स्तर से ऊपर उठाकर राष्ट्रीय आंदोलन का रूप देने का प्रयास किया। प्रकाश करात् भी इस विद्रोह को राष्ट्रीय आंदोलन मानते हैं।[19]

डा० मजूमदार भी इस तथ्य को मानते हैं कि विद्रोह का राष्ट्रीय महत्व 'अप्रत्यक्ष और उत्तरकालिक'' था। जिस प्रकार मरा हुआ जूलियस सीज़र जीवित के स्थान पर अधिक शक्तिशाली था, उसी प्रकार 1857 की क्रान्ति का प्रभाव अत्यन्त महत्वपूर्ण था। इसका वास्तविक स्वरूप कुछ भी रहा हो, शीघ्र ही यह भारत मे अंग्रेज़ी सत्ता के लिये चुनौती का प्रतीक बन गया। अंग्रेज़ी दासता से स्वतंत्रता हेतु लड़ते हुए जन्म ले रहे भारतीय राष्ट्रवाद के लिये यह चमकता हुआ उदाहरण था

और इसे अंग्रेज़ों के विरुद्ध राष्ट्रीय स्वतंत्रता युद्ध का पूर्ण यश प्राप्त हुआ।[20] स्वतंत्रता से पूर्व लिखी गयी सुंदर लाल शर्मा की पुस्तक 'भारत मे अंग्रज़ी राज' (पुस्तक अंग्रेज़ों द्वारा ज़ब्त कर ली गयी थी) तथा अमृतलाल नागर की पुस्तक '**ग़दर के फूल**' में 1857 के विद्रोह से संबंधित भ्रान्तियों को दूर करने का प्रयास किया गया है। अशोक मेहता ने अपनी पुस्तक "The great Rebellion' में 1857 के विद्रोह के राष्ट्रीय स्वरूप को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

क्या यह अंग्रेज़ों के विरुद्ध प्रथम विद्रोह था ?

कुछ विद्वान 1857 की क्रांन्ति को अंग्रेज़ों के विरुद्ध लड़ा गया प्रथम विद्रोह नहीं मानते हैं। इनके अनुसार इससे पूर्व भी विद्रोहियों ने विदेशी सत्ता से आज़ादी हेतु अंग्रेज़ों से मोर्चा लिया था। चरनजीत सिंह अटवाल 1857 की क्रांन्ति के स्थान पर ' प्रथम आंग्ल सिक्ख युद्ध' (1845–46) को प्रथम स्वत़ंत्रता संग्राम कहना अधिक उपयुक्त समझते हैं।[21] जबकि एस० मुथैया[22] और एल० आर० जगदीसन[23]

वैलूर विद्रोह(1806) को यह श्रेय देना चाहते हैं। मजूमदार महोदय तो स्पष्ट कहते हैं––''यह तथाकथित प्रथम राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम न तो प्रथम, न ही राष्ट्रीय और न ही स्वतंत्रता संग्राम था।''[24]

क्रान्ति को 'प्रथम स्वतंत्रता संग्राम मानते हुए सावरकर तर्क देते हैं कि यह एक सुनियोजित स्वतंत्रता संग्राम था और इससे पूर्व के विद्रोह तो 1857 में होने वाले महान् नाटक का पूर्वाभ्यास थे।[25] एस० बी० चौधरी भी मानते हैं कि यह युद्ध स्वतंत्रता का प्रथम युद्ध ही था क्योंकि भारतीय इतिहास के समस्त लिखित पट से इतने विशाल विदेशी विरुद्ध संयोजन का खोजना असंभव है जिसमें बहुत से लोग तथा प्रान्त जुटे हों।[26]

इस विवाद के दोनों पक्षों के तार्किक दृष्टिकोणों का शोधपरक अनुशीलन करने के पश्चात निष्कर्ष स्वरूप यह तथ्य सामने आता है कि यदि भौगोलिक द्ष्टि से देखें तो यह विद्रोह भारत के

कुछ ही क्षेत्रों में फैला था इस आधार पर इसे राष्ट्रीय कहना कठिन है, किन्तु इसमे अंतर्निहित भावना जो अंग्रेज़ों को भारत से निकालने पर आतुर थी इसके तहत यह विद्रोह राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन कहा जा सकता है। यद्यपि यह विद्रोह आरंभ में सैनिक विद्रोह था, और इसमें इनकी सक्रिय भागीदारी भी थी, किन्तु धीरे धीरे इसने राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन का रूप ले लिया, जिसमें आम जनता और कुछ असंतुष्ट शासकों का भरपूर सहयोग प्राप्त हुआ था। अंग्रेज़ों के विरुद्ध भारतीयों का रोष प्रथमतः इतनी तीव्रता से प्रकट हुआ जिससे कुछ समय के लिये सही, अंग्रेज़ों की सत्ता की चूलें हिल गयीं। ऐसा इससे पूर्व के विद्रोहों में नहीं हो सका था। इस कारण इसे प्रथम विद्रोह कहने की सार्थकता सिद्ध हो जाती है।

यह सत्य है कि अंग्रेज़ों से छीने गये प्रदेशों पर भारतीयों की पकड़ सुदृढ़ न रह सकी क्योंकि यह युद्ध विश्व की सर्वाधिक साधन संपन्न राजनैतिक सत्ता के विरुद्ध भारतीयों का अनियोजित,

असंगठित तथा कुशल नेतृत्व के अभाव मे लड़ा गया युद्ध था। अंग्रेज़ों के पास आधुनिक हथियारों से लैस बड़ी सेना थी जबकि भारतीय मुख्यतः तलवारों और भालों से लड़ रहे थे। यद्यपि कुशल मार्ग दर्शन के अभाव में इस क्रांन्ति को सफलता का श्रेय नहीं मिल पाया, किन्तु इस विद्रोह के परिणामस्वरूप सुदृढ़ हुए भारतीय राष्ट्रवाद का पता अंग्रेज़ों को चल गया। कहा जाता है कि क्रांन्तियां शासन का स्वरूप बदल देती हैं। 1857 की क्रांन्ति के बाद भारतीयों पर ईस्ट इण्डिया कंपनी का शासन समाप्त हो गया और ब्रिटिश महारानी ने इसकी कमान संभाल ली। इस स्वतंत्रता आंदोलन ने अनेक राष्ट्रवादी आंदोलनों को जन्म दिया और महात्मा गांधी जैसे सर्वमान्य नेता के नेतृत्व में अंततः भारतीयों ने अंग्रेज़ों के चंगुल में लगभग 200 वर्षों से अधिक समय से फंसी अपनी स्वतंत्रता छीन ली। विद्रोह की असफलता ने भी स्वतंत्रता के एक नये युग का सूत्रपात किया। इतना ही नहीं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी अंग्रेज़ों की

राजनैतिक सत्ता को इस क्रांन्ति के कारण ठेस पहुंची।

1957 में भारतीयों द्वारा इस विद्रोह की शताब्दी बड़ी धूमधाम से मनायी गयी। भारत सरकार ने 2007 में बड़े उल्लास के साथ 1857 की क्रांन्ति को प्रथम स्वाधीनता संग्राम मानते हुए इसकी 150 वीं वर्षगांठ मनायी। इस हेतु केन्द्रीय बजट से दस करोड़ रू० की धनराशि का प्रावधान किया गया। अनेक राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों तथा गोष्ठियों का आयोजन किया गया और अनेक उत्कृष्ट शोधपत्र प्रस्तुत किये गये। अनेक पुस्तकों का विमोचन किया गया जिसमें अमरेश मिश्र की 'War of Civilization: A Controversial History of the Rebellion of 1857' तथा अनुराग कुमार की पुस्तक 'Recalcitrance' प्रमुख हैं। ब्रिटिश नेशनल म्यूज़ियम लंदन ने 10 मई 2007 को क्रांन्ति की 150 वीं वर्षगांठ के अवसर पर प्रदर्शनी का आयोजन किया और ऑन लाइन प्रदर्शनी 'India Rising' की व्यवस्था की। अखिल

भारतीय मजलिसे–तामीरे–मिल्लत और टीपू सुल्तान शोध केन्द्र हैदराबाद की ओर से 17–19 अगस्त 2007 तक विभिन्न कार्यक्रमों का आयोजन किया गया जिनका उद्देश्य भारत के नागरिकों में हिन्दू मुस्लिम एकता तथा राष्ट्रवादी भावना को सुदृढ़ करना था।

वर्तमान समय में **चौरी–चौरा शताब्दी महोत्सव** एवं **आज़ादी के अमृत महोत्सव** के तहत देश भर में राष्ट्रवाद एवं राष्ट्रीय एकता तथा देश की राष्ट्रीय संस्कृति के संरक्षण तथा संवर्धन का प्रयास किया जा रहा है। आज़ादी के अमर शहीदों की याद में मनाए जाने वाले इन कार्यक्रमों में निश्चित रूप से 1857 की प्रथम क्रांति की खुशबू समाहित है। 1947 में मिली स्वतंत्रता की आधारशिला निःसंदेह 1857 में रख दी गयी थी जिसको संरक्षित रखने का महत्वपूर्ण कार्य नयी पीढ़ी को करना है।

संदर्भ

1 ग्रोवर एवं यशपाल, आधुनिक भारत का इतिहास, एक

नवीन मूल्यांकन, दिल्ली, 1987 पृष्ठ 245

2 The History of Indian Mutiny-Giving a detailed Account of Sepoy insurrection in India.The London Printing and publishing company, 1860.

3 Karl Marx and Fredrick Angles, The first war of Independence, 1857-59. Moscow foreign Languages Publishing House, 1959.

4 The Indian war of Independence. 1857, Bombay 1947.

5 Inder Malhotra, The first war of Independence, Asian age, 3.10.2008.

6 British Paramountcy and Indian Renaissance, part I,pg. 624-25

7 The Truth About Indian Mutiny of 1857; The Sikh Review,1972,pg.32-44.

8 ग्रोवर तथा यशपाल, वही, पृष्ठ, 248,

9 अट्ठारह सौ सत्तावन का विद्रोह, प्रथम राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन या मात्र सैनिक विद्रोह, उत्तर प्रदेश(प्रथम स्वाधीनता संग्राम विषेशांक)अगस्त 2007,

पृष्ठ 211.

10 Theories of Indian Mutiny- 1857, pg. 173

11 Eighteen fifty seven, Apendix-X and XV

12 S&T Magazine, issue 121, September 1988. pg.20.

13 Eighteen fifty seven, pg. 407—408.

14 Sepoy Mutiny and the Revolt of 1857.pg. 2303-31.

15 Looking back a hundred years of Mutiny of 1857.Puja, Annual issue; 1956;pg 22-24.

16 The Truth about Indian Mutiny of 1857. The Sikh Review,1972,pg. 32-44.

17 ग्रोवर एवं यशपाल, वही, पृष्ठ 245—46.

18 Sita Ram Yechuri, The Empire strikes back, Hindustan Times, January 2006.

19 1857 In The Hearts and Minds Of People,vol.XXXI. N0. 19, May 2007.

20 ग्रोवर एवं यशपाल, वही, पृष्ठ 248.

21 1857 Anniversary- Deputy Speaker Flutters, The Hindu, 5.10.2004./Rediff news, 10.5.2007.

22 The First war of Independence? The Hindu, 25.3.2007.

23 Tamils Dispute India Mutiny date (11.7.2006) B.B.C News. 5.10.2008

24 British Paramountcy and Indian Renaissance,Part I, pg. 624-25.

25 ग्रोवर एवं यशपाल, वही, पृष्ठ 246.

26 Theories Of Indian Mutiny 1857,pg 173.

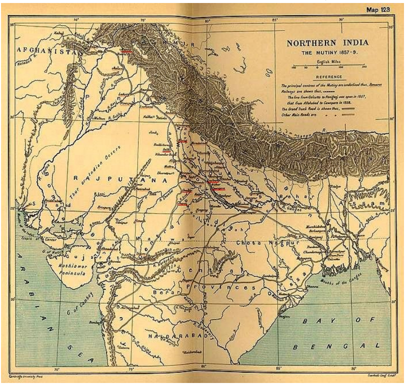

27 https://en.wikipedia.org/wiki/Indian_Rebellion_of_1857

The National Youth rally at the National Celebration to Commemorate 150th Anniversary of the First War of Independence, 1857 at Red Fort, in Delhi on 11 May 2007

ISBN: 978-81-951568-9-4

1857 प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम में दलित वर्ग के योगदान का ऐतिहासिक मूल्याँकन

डॉ0 सतीश कुमार सिंह,
एसोसिएट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष इतिहास,
डी0एस0एन0 महाविद्यालय, उन्नाव।

इतिहास मानव समाज के अतीत जीवन का दर्पण होता है। हम वर्तमान को अतीत के दर्पण में देखते है। अतः इतिहास से यह

अपेक्षा होती है कि वह पारदर्शी हो परन्तु जब हम भारतीय इतिहास के सन्दर्भ में इसका विश्लेषण करते हैं तो पाते हैं कि यहाँ जगह–जगह इतिहास अधूरा लगता है या छोड़ दिया गया है। इतिहासकार डी0 एस0 डीन्कर लिखते हैं वस्तुतः भारत का लिखित इतिहास भारत के यथार्थ का आइना नहीं है। यह एक विशेष दृष्टि से लिखा गया है, जिसमें केवल उच्चवर्गीय नायकों का उल्लेख है। दलितों के विषय में इतिहास प्रायः मौन है या उनके प्रति उपेक्षा का भाव है।[1]

1857 के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में ईमानदारी से देखें तो स्पष्ट हो जायेगा कि दलित समाज किसी भी तरह का बलिदान देने में पीछे नहीं रहा है और साथ ही मातृभूमि के लिए फाँसी की सजा और सीने में गोली खाकर जीवन को देश के नाम समर्पित कर दिया। इस समाज की महिलाओं ने भी जान की बाजी लगाकर अंग्रेजों से लोहा लिया। इस क्रम में वीरांगना झलकारी बाई, ऊदा देवी, महावीरा देवी,

मातादीन भंगी, चेतराम जाटव, बल्लू मेहतर, वीरा एवं बांके का उल्लेख करना प्रासंगिक होगा, इसके अतिरिक्त अनगिनत नाम ऐसे हैं जो इतिहास में दफन हैं जिनका उल्लेख तक नहीं किया गया है।

(1) झलकारी बाईः–

वीरांगना झलकारी बाई अछूत वर्ग की उपजाति कोरी समाज से थीं। उनके पति पूरन कोरी राजा गंगाधर राव के दरबार में मामूली सिपाही थे।[2] झलकारी बाई पर विस्तार से अध्ययन करने वाले इतिहासकार मोहनदास नैमिशराय ने अपनी पुस्तक ''वीरांगना झलकारी बाई'' के विषय में लिखा है कि वह झाँसी से चार कोस की दूर मोजल गांव की रहने वाली थीं।[3] झलकारी अपने पति के पैतृक पेशा कपड़ा बुनने का कार्य करती थी। कभी–कभी वह अपने पति के साथ राजमहल जाती थी। रानी लक्ष्मीबाई उनके व्यक्तित्व तथा सुन्दरता से बड़ी प्रभावित थी। झलकारी बचपन से ही वीर प्रकृति की थी। उनमें उत्साह, तत्परता जैसे प्रधान गुणों का

समावेश था। झलकारी ने अपने पति पूरन से सभी सैनिक गुणों जैसे–तीर, तलवार, बन्दूक चलाना तथा घुड़सवारी करने में निपुणता प्राप्त कर ली। यह सैन्य प्रशिक्षण भविष्य में काम आया, जब अंग्रेजों ने झाँसी पर अधिकार करने का प्रयास किया।[4] झाँसी की रानी ने झलकारी बाई को महिलाओं की फौज का कमाण्डर बना दिया। इस सम्बन्ध में मोहनदास नैमिशराय लिखते हैं कि, ''महिलाओं की इस फौज की कमाण्डर एक दलित समाज की एक महिला को बनाना उस समाज के लिए प्रेरणा की बात थी। जिसने अपने पैतृक व्यवसाय छोड़कर सैनिक बनना स्वीकार कर लिया।[5]

झलकारी के पति पूरन कोरी जिसने 1857 के विद्रोह में झाँसी की कई टुकड़ियों का नेतृत्व किया और बहुत से अंग्रेजों को मौत के घाट उतार दिया परन्तु दुर्भाग्यवश उसके पति पूरन कोरी अपनी मातृभूमि की रक्षा करते हुए शहीद हो गये। झलकारी बाई का रंग रूप रानी लक्ष्मीबाई से मिलता जुलता था। जब झाँसी की रानी को अंग्रेजों ने किले में घेर

लिया तब झलकारीबाई ने रंग रूप मिलते जुलते होने के कारण स्वयं रानी का रूप धारण कर अंग्रेजों से युद्ध करने के लिए कूद पड़ी। सूझबूझ और वीरता से झाँसी की रानी को छिपाकर निकाला और उन्हें बिठूर के किले के लिए रवाना किया। झलकारी की योजना सफल हुई। कितने ही अंग्रेजों को उन्होंने मौत के घाट उतार दिया।[6] 4 जून, 1858 को स्टुअर्ट ने कहा था कि ''अगर हिन्दुस्तान की 1 फीसदी लड़कियाँ इस लड़की (झलकारीबाई) की तरह आजादी की दीवानी हो गई तो हम सबको देश छोड़कर हाथ झाड़कर भागना पड़ेगा।[7]

झलकारीबाई ने अंग्रेजों से घमासान युद्ध किया और अनेक अंग्रेज अफसर उसके हाथों मारे गये। अन्ततः रानी लक्ष्मी के प्रति सच्ची मित्रता, मातृभूमि की रक्षा और स्वतंत्रता के लिए अपने कर्तव्य का पालन करते हुए वीरांगना झलकारीबाई वीरगति को प्राप्त हो गईं।

(2) ऊदा देवीः–

1857 के संग्राम में बेगम हजरत महल का नाम बड़े ही सम्मान से लिया जाता है परन्तु उन्हीं के साथ युद्ध में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाली वीरागंना ऊदा देवी पासी का नाम लम्बे समय तक उपेक्षित बना रहा।[8] बेगम हजरत महल की गाथा बिना ऊदा देवी के पूरी नहीं हो सकती। 1857 के सग्राम में ऊदा देवी के साहसिक कार्यों का जिक्र तो हुआ परन्तु उन्हें एक 'अज्ञात महिला' के नाम से सम्बोधित किया गया है। यह वीरांगना नवाब वाजिद अली शाह के सिकन्दरबाग स्थित महल में काम करने वाली साधारण महिला थी जिसने 1857 के गदर के दौरान एक ऐसा काम कर दिखाया था जो प्रशिक्षित सैनिकों के लिए भी एक चुनौती से कम नहीं था।[9] ऊदा देवी अवध के छठे बादशाह नवाब वाजिद अली शाह की बेगम हजरत महल की महिला सैनिक दस्ते की कप्तान थी। इस दस्ते की महिलायें बड़े जबर्दस्त तरीके से छापामार युद्ध करती थीं, जिससे अंग्रेज बड़े घबराते थे। अंग्रेज सैन्य अधिकारी

इन्हें जंगली बिल्लियों और काली बिल्लियों के नाम से याद कर सिहर उठते थे। ऊदा देवी इसी दस्ते की एक लड़ाकू वीरांगना थी।[10] अंग्रेज सार्जेंट फोर्ब्स मिशल ने सबसे पहले सिकन्दराबाद में पीपल के पेड़ के पास बैठी एक ब्लैक कैट का जिक्र किया है जिसने एक–एक कर अंग्रेजी सेना के 36 लोगों को मार गिराया और बाद मे स्वयं मर गयी।[11]

यह घटना 16 नवम्बर, 1857 को लखनऊ के सिकन्दरबाग (तब घने पेड़ों का जंगल) की है जब ऊदा देवी अपने पति मक्का पासी (चिनहट की लड़ाई में शहीद हुए) का बदला लेने के लिए पीपल के पेड़ पर चढ़ गई। इस पेड़ के नीचे ठण्डे पानी से भरे मटके रखे थे। अंग्रेज सैनिक यहाँ प्यास बुझाने आते थे। अंग्रेज सेना की 63वीं बटालियन जब यहाँ पहुंची तो ऊदा देवी ने पेड़ से 36 अंग्रेज सैनिकों को मार डाला, सौनिकों की तलाश में यहाँ पहुचें कैप्टन डासन को पेड़ के नीचे सिर्फ लाशें ही मिली। पेड़ के ऊपर पुरूष के वेश में कैप्टन को छाया दिखी। अंग्रेज सेनाधिकारी ने उसे गोली मारी जब

वह नीचे गिरी तो कैप्टन को दिखा कि वह महिला है। कैप्टन को बहुत दुःख हुआ। तभी वहाँ जनरल कैंपवेल भी पहुंच गये। ऊदा देवी को वहीं दफना दिया गया।

डब्लू0 गार्डन एलेक्जेण्डर ने लिखा है कि, ''सिकन्दरबाग को बचाने के लिये इस शहर की महिलायें जंगली बिल्लियों की तरह झपटकर अंग्रजों से लड़ रही थीं और उनके मारे जाने के बाद ही पता लगा कि वे स्त्रियाँ थीं।[12] इन महिलाओं का नेतृत्व वीरांगना ऊदा देवी कर रही थीं।

बड़े ही खेद का विषय है वीरांगना ऊदा देवी को पुरातत्व विभाग मान्यता नहीं देता है। पुरातत्व विभाग ने रोशन तकी की किताब लखनऊ 1857 की किताब ''लखनऊ 1857ः द वार्स आफ लखनऊ'' की सहायता से 1857 के शहीदों की सूची जारी की जिसमें ऊदा देवी का जिक्र तक नहीं किया गया। पुरातत्व विभाग ने सार्जेंट फोर्बेस की पुस्तक को संज्ञान में नहीं लिया और ऊदा देवी के बलिदान को

नकार दिया। 16 नवम्बर, 1994 को उत्तर प्रदेश पासी जाग्रति मण्डल ने वीर वाला की प्रतिमा पर पहली बार शहीद दिवस मनाया। 24 मई, 1998 को तत्कालीन मुख्यमंत्री कल्याण सिंह ने सिकन्दरबाग चौराहे पर वीर बाला ऊदा देवी की मुख्य प्रतिमा स्थापित करने का ऐलान किया और 12 नवम्बर को यह प्रतिमा चौराहे पर स्थापित की गयी।[13] 16 नवम्बर, 2000 को वीरांगना ऊदा देवी के नाम पर डाक टिकट जारी हुआ और पूरे देश को पहली बार पता चला कि ऊदा देवी नाम की भी कोई वीरांगना थी।

(3) महावीरी देवीः–

महावीरी देवी का जन्म ग्राम मुंड भर–भाजू, तहसील कैरोना, जिला मुजफ्फरनगर, उत्तर प्रदेश में हुआ। वे जाति की भंगी परन्तु कुशाग्र बुद्धि की थी। महावीरी देवी के पिता सूप और पंखा बनाते थे।[14] उन्होंने सामंती जमींदारों के शोषण किये जाने का विरोध किया। महावीरी देवी ने अपने समाज की

नारियों का एक संगठन बनाया जिसका उद्देश्य घृणित कार्यो में लगी महिलाओं और बच्चों को इस काम से हटाना था। सम्मान के लिए जीना व मरना ही उनका मूलमंत्र था।[15]

अंग्रेजों ने जब मुजफ्फरनगर को अपने अधिकार में लेने के लिये आक्रमण किया तब इस स्वाभिमानी नारी ने बाईस महिलाओं की टोली को लेकर अंग्रेज सेना पर सशस्त्र आक्रमण कर दिया अंगेजों को यह उम्मीद भी नहीं थी कि गाँव की महिलाये उन पर भयानक आक्रमण कर सकेंगी।[16] महावीरी देवी की टोली के हाथों में कांटे और गंड़ासे थे। घमासान युद्ध में अनेक अंग्रेज महावीरी के हाथों मारे गये। अंग्रेजों ने इस टोली को नियंत्रित करने के लिये तीन तरफ से हमला कर गोलियों की बौछार कर दी जिसमें महावीरी देवी सहित सभी 23 वीर बालायें मातृभूमि की रक्षा करते हुए शहीद हो गयीं।

(4) मातादीनः–

1857 के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम में मंगल पांडे का नाम सभी लोग जानते हैं परन्तु वास्तविकता यह है कि इसकी पटकथा एक दलित मातादीन ने लिखी थी। मंगल पांडे क्रान्ति के शोले थे तो मातादीन उसकी प्रथम चिंगारी था। 10 मई, 1857 की क्रान्ति की ज्वाला कैसे भभक उठी? इस पर ध्यान जाते ही यह जिज्ञासा होती है कि आखिर कौन सी ऐसी बात थी जिससे इसका शुभारम्भ हुआ?[17] यह घटना बैरकपुर छावनी जो कलकत्ता से 16 मील दूर है वहां घटित हुई। बैरकपुर छावनी में कारतूस बनाने का एक कारखाना था। इस कारखाने में काम करने वाले बहुत से व्यक्ति अछूत जाति के थे। इसी जाति के एक व्यक्ति को जब प्यास लगी तो उसने एक सैनिक से लोटा मांगा। वह सैनिक एक ब्राम्हण था। उसने लोटा मांगने वाले व्यक्ति को जो फैक्ट्री का कर्मचारी था, परन्तु नीच जाति का होने के कारण लोटा नहीं दिया। लोटा न देने के कारण उस व्यक्ति को अपमान महसूस हुआ।

उन्होंने उस ब्राम्हण सैनिक से कहा ‘‘बड़ा आया ब्राम्हण का बेटा! जिन कारतूसों का तुम उपयोग करते हो उन पर गाय व सुअर की चर्बी लगाई जाती है और उन्हें तुम अपने दांतों से तोड़कर बंदूक में भरते हो उस समय तुम्हारा ब्राम्हणत्व और धर्म कहां चला जाता है? क्या किसी प्यासे व्यक्ति को पानी पीने के लिए लोटा देने से तुम्हारा धर्म भ्रष्ट हो जाएगा? धिक्कार है तुम्हारे ब्राम्हणत्व को। वह अछूत व्यक्ति कोई और नहीं मातादीन था जिसने हिन्दुस्तानी सिपाहियों की आंखे खोल दी तथा क्रान्ति के लिए प्रथम चिंगारी सैनिक छावनी में फेंक दी।[18] 1 मार्च, 1857 की सुबह परेड के मैदान में मंगल पांडे लाइन से निकलकर बाहर आ गये और अंग्रेजों को इन बातों का दोषी ठाहराते हुए गोलियां चलाने लगे। मंगल पांडे को गिरफ्तार कर लिया गया और 8 अप्रैल, 1857 को उन्हें पलटन के सम्मुख फांसी पर लटका दिया गया। जो गिरफ्तार हुए उनमें मातादीन प्रमुख थे और अंगेजों की चार्जशीट में जो पहला नाम था वह मातादीन का

था। बाद में मातादीन को भी अंग्रेजों ने फांसी पर लटका दिया। इस प्रकार मातृभूमि की रक्षा के लिए मातादीन ने अपने प्राणों की आहूती दी।

(5) चेतराम जाटव और बल्लू (मेहतर):–

चेतराम जाटव और बल्लू मेहतर एटा जनपद के निवासी थे, जिन्होंने क्रान्ति का बिगुल बजा दिया और हजारों देशभक्त घरों से निकलकर प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के कारवाँ में शामिल हो गये, इन दोनों का योगदान स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में सदैव चिरस्मरणीय रहेगा।

एटा जनपद में बैरकपुर छावनी को क्रान्ति का समाचार मिलते ही क्रान्तिकारियों का काफिला सड़कों पर आ गया। मिस्टर फिलिप्स और मिस्टर हाल, जो एटा जनपद के तत्कालिक अधिकारी थे, क्रान्तिकारियों को काबू में करने की तैयारी करने लगे। जगह–जगह पहरा सख्त कर दिया गया। किसी पर जरा शक होने पर कठोर दण्ड दिया जाने लगा। किन्तु क्रान्ति की ज्वाला तीव्र रूप मे भड़क

उठी थी। जिसकी लपटें सम्पूर्ण जनपद में फैल गयी।[19] 24 मई, 1857 को एटा जनपद में सैकड़ों देशभक्तों ने अंग्रेजों के विरूद्ध संघर्ष छेड़ दिया। घमासान युद्ध में 10 क्रान्तिवीरों ने वीरगति प्राप्त की। 26 मई, 1857 की क्रान्ति की ज्वाला में चेतराम जाटव और बल्लू मेहतर अपने प्राणों की आहूति देने के लिए कूद पड़े।[20] इस क्रान्ति में उनके साथ सदाशिव मेहरे, रामनाथ तिवारी, चतुर्भुज वैश्य, सदासुख राम सक्सेना, विशम्भर कोटेदार, द्वारिका प्रसाद व हफीज रज़ब अली आदि भी थे। एटा जनपद में क्रान्ति की ज्वाला में प्रज्वलित करने वाले चेतराम जाटव व बल्लू मेहतर जो क्रान्ति के प्राण थे, को पेड़ों से बांधकर गोलियों से उड़ा दिया गया। बाकियों को भी कासगंज में पेड़ों पर लटकाकर फांसी दी गयी।[21]

(6) बांके चमारः–

अमर शाहिद बांके चमार मछली शहर जौनपुर निवासी थे। जिन्होंने 1857 की क्रान्ति में भाग लिया,

वह क्रान्ति के बागी नेता हरिपाल सिंह के साथी थे। क्रान्ति विफल होने पर 18 लोगों को बागी घोषित कर दिया गया। बांके चमार प्रमुख थे। जिस पर वित्तीय सरकार ने 50 हजार इनाम घोषित कर रखा था अंग्रजों ने उन्हें गिरफतार कर मृत्यु दण्ड दिया।[22] वह वीर सेनानी अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए हँसते–हँसते फाँसी के फन्दे पर झूल गये।

(7) वीरा (पासी):–

वीरा पासी रायबरेली जनपद के मुरारमऊ स्टेट के राजा बेनीमाधवसिंह के अंगरक्षक थे जो उन्हें अंग्रेज अधिकारियों के पूर्ण सतर्क होने के उपरान्त भी जेल से निकालकर लाये। अंग्रजों ने वीरा पासी को मुर्दा या जिन्दा पकड़ने का ऐलान किया उस पर 50 हजार का इनाम घोषित किया परन्तु वीरा पासी एक महान देश भक्त होने के साथ ही साथ बहादुर एवं बुद्धिमान भी थे। स्वत्रंता संग्राम में राजा बेनी माधव सिंह के साथ उनका किया गया

बलिदान एवं त्याग देश और समाज के लिए प्रेरणा स्रोत रहेगा।[23]

निष्कर्षः–

यहाँ दलित समाज के क्रान्तिवीरों के कुछ ही उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं, ऐसी असंख्य महिलाएं और पुरूष हैं, जिन्होंने सन् 1857 के संग्राम में बढ़ चढ़कर हिस्सा लिया। इन क्रान्तिवीरों ने जमकर अंग्रेजों से लोहा लिया परन्तु संसाधनों की कमी के कारण इन्हें पराजय का मुँह देखना पड़ा किन्तु इनके बलिदान ने ही भविष्य की पीढ़ियों के लिये प्रेरणा स्रोत बनकर भारत की स्वतंत्रता का मार्ग प्रशस्त किया।

आज जरूरत इस बात की है कि 1857 के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम में दलित समाज के शहीद होने वाले क्रान्तिवीरों के इतिहास पर उचित ढंग से प्रस्तुत किया जाये। अभी भी कई नाम इतिहास के पन्नों में दफन है जिन पर कुछ भी नहीं लिखा गया है और ऐसे नाम गुमनामी के अंधेरे में है जिनको

प्रकाश में लाना अति आवश्यक है, ताकि भविष्य की पीढ़ियों को सही और सच्चा इतिहास पता चले और भारतीय इतिहास के अधूरेपन को समाप्त किया जा सके।

सन्दर्भः–

1 डी0सी0 डीन्कर, स्वतंत्रता संग्राम में अछूतों का योगदान, गौतमबुद्ध सेन्टर, दिल्ली 2007, पृष्ठ–13

2 वही–पृष्ठ–37

3 मोहनदास नैमिषराय, वीरांगना झलकारी बाई, राधा कृष्णन प्रकाशन, दिल्ली 2011, पृष्ठ–7

4 डी0सी0 डीन्कर, स्वतंत्रता संग्राम में अछूतों का योगदान गौतमबुद्ध सेन्टर, दिल्ली 2007, पृष्ठ–37

5 मोहनदास नैमिषराय, वीरांगना झलकारी बाई, राधा कृष्णन प्रकाशन, दिल्ली 2011, पृष्ठ–82

6 मोहनदास नैमिषराय, स्वतंत्रता संग्राम में दलित क्रान्तिकारी, नीलकंठ प्रकाशन, नई दिल्ली 2002, पृष्ठ–137

7 वही, पृष्ठ–138

8 शिशिर कर्मेन्दु, 1857 की राजक्रान्ति विचार और विश्लेषण, प्रथम संस्करण, 2008, नई दिल्ली, अनामिका पब्लिशर्स, पृष्ठ–127

9 फोर्ब्स मिसल, रेमीनी सैंसेज ऑफ दि ग्रेट म्यूटिनी, 1857–59 लंदन (1867), पृष्ठ–57–58

10 गार्डन एलेक्जेण्डर, रिफलैक्शन ऑफ ए हाईलैण्ड सवार्ल्टस, पृष्ठ–104

11 सुमन मंजू, दलित महिलायें, प्रथम संस्करण, 2004, नई दिल्ली, सम्यक प्रकाशन, पृष्ठ–233

12 डी0सी0 डीन्कर, स्वतंत्रता संग्राम में अछूतों का योगदान, गौतमबुद्ध सेन्टर, दिल्ली, 2007, पृष्ठ–43

13 सुमन मंजू, दलित महिलायें, प्रथम संस्करण, 2004, नई दिल्ली, सम्यक प्रकाशन, पृष्ठ–214

14 वही, पृष्ठ–215

15 डी0सी0 डीन्कर, दलित महिलायें, प्रथम संस्करण, 2004, नई दिल्ली, सम्यक प्रकाशन, पृष्ठ–46

16 वही, पृष्ठ–46

17 वही, पृष्ठ–48–49

18 मोहनदास नैमिषराय, भारतीय दलित आन्दोलन एक संक्षिप्त

इतिहास, बुक्स फॉर चेन्ज, नई दिल्ली, 2004, पृष्ठ–63

19 डी0सी0 डीन्कर, भारतीय दलित आन्दोलन एक संक्षिप्त इतिहास, बुक्स फॉर चेन्ज, नई दिल्ली, 2004, पृष्ठ–49

20 वही, पृष्ठ–50

21 वही, पृष्ठ–54

ISBN: 978-81-951568-9-4

1857 का महासमर एवं सिनेमा

डॉ0 वन्दना सन्त

एसो0 प्रोफेसर–प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व विभाग

नारी शिक्षा निकेतन पी0जी0 कॉलेज, लखनऊ

सौ वर्षों से भी अधिक समय से सिनेमा जनमानस के मस्तिष्क पर अपनी अमिट छाप छोड़ने में सक्षम रहा है। 1913 से यह सफर प्रारम्भ हुआ। 108 वर्षों के लम्बे समय में विविध विषयों पर फिल्में बनायी गयी हैं। इतिहास भी इससे अछूता नहीं रहा।

विविध ऐतिहासिक विषयों को केन्द्र में रखकर फिल्मों का निर्माण किया जाता रहा है। फिल्मों के माध्यम से इतिहास के पक्षों राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक आदि को रूपहले पर्दे पर उतारा जाता रहा है। कहीं न कहीं इन घटनाओं से इतिहास को जाना व समझा जा सकता है। विगत कुछ वर्षों से सिनेमा को भी इतिहास के स्रोत के रूप में देखा जाने लगा है। यद्यपि सिनेमा में कल्पना का समावेश होता है तथापि ऐतिहासिक घटनाओं, परिवेश, परिस्थितियों आदि पर भी प्रकाश पड़ता है। तत्कालीन वेश–भूषा, रहन–सहन, खान–पान, मान्यताओं, प्रथाओं, परम्पराओं धार्मिक विश्वासों, भाषा, कला, विभिन्न संस्कृतियों आदि के विषय में भी जानकारी प्राप्त होती है।

प्रस्तुत शोध पत्र '1857 के महासमर एवं सिनेमा' में सन् 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम पर आधारित फिल्मों पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है एवं इन फिल्मों के माध्यम से

तत्कालीन ऐतिहासिक घटनाओं एवं परिस्थितियों का खांका खींचने का भी प्रयास किया गया है।

1857 का स्वतंत्रता संग्राम भारतीय इतिहास की महत्वपूर्ण घटनाओं में से एक है। जिसे नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। यह अंग्रेजी हुकुमत के विरूद्ध प्रथम क्रान्ति थी, जिसके दूरगामी परिणाम निकले। सिनेमा पर दृष्टि डालें तो ज्ञात होता है कि 1857 के स्वतंत्रता संग्राम को केन्द्र में रखते हुए कई फिल्मों का निर्माण किया गया। 1946 ईस्वी में मोहन सिन्हा द्वारा निर्मित '1857' मुक्ति संग्राम पर बनने वाली प्रथम फिल्म थी।[1] इसके पश्चात् देश के स्वतंत्र होने के बाद 1953 में रानी लक्ष्मीबाई के जीवन पर आधारित फिल्म ''झांसी की रानी' आयी। जिसका निर्देशन सोहराब मोदी के द्वारा किया गया था। 1960 में नानाभाई भट्ट की फिल्म 'लाल किला', 1977 में सत्यजीत रे द्वारा निर्देशित फिल्म 'शतरंज के खिलाड़ी, अगले ही वर्ष 1978 में श्याम बेनेगल की 'जुनून' नाम के शीर्षक वाली फिल्म आयी। इसके बाद लम्बे अंतराल के पश्चात्

लगभग 27 साल बाद सन् 2005 में केतन मेहता ने आजादी के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के अग्रगण्य नायक मंगल पाण्डे को लेकर फिल्म का निर्माण किया एवं शीर्षक रखा ''मंगलपाण्डे : दि राइजिंग'[2]। 2005 के बाद लगभग 14 वर्ष पश्चात पुनः झांसी की रानी लक्ष्मीबाई पर एक अन्य फिल्म बनायी गयी ''मणिकर्णिका' यह फिल्म सिनेमाघरों में 25 जनवरी 2019 को रिलीज की गयी।[3] फिल्म का निर्माण जी स्टूडियो द्वारा एवं निर्देशन कृष द्वारा किया गया। 1953 में आयी ''झांसी की रानी'' की तुलना में यह एक बेहतर एवं प्रभावशाली फिल्म मानी गयी। इस प्रकार उपर्युक्त सात फिल्में 1857 के स्वतंत्रता संग्राम से सम्बन्धित मानी जा सकती है।

स्वतंत्रता के पूर्व आने वाली फिल्म '1857' प्रथम फिल्म थी जो 1857 के भारतीय विद्रोहों की पृष्ठभूमि पर आधारित थी, जिसे स्वतंत्रता के प्रथम युद्ध के रूप में जाना जाता है। वस्तुतः इसमें एक प्रेमकथा चलती है जिसके बीच में ऐतिहासिक घटनाचक्र दर्शाया गया है। तत्कालीन

परिवेश, परिस्थितियों एवं बोल–चाल को बखूबी दर्शाया गया है। अंग्रेजी सरकार द्वारा दिल्ली की फतह दर्शायी गयी हैं। अंत में एक पात्र यह कहता है कि 'खुशखबरी है मल्लिका विक्टोरिया ने यह घोषणा की है कि अब ईस्ट इण्डिया कम्पनी का शासन भारत से समाप्त हो जायेगा और शासन मल्लिका ने अपने हांथ में ले लिया है। साथ ही मल्लिका विक्टोरिया ने अन्त में यह भी कहा है कि 'अब हिन्दुस्तान पर हुकुमत–ए–खुदइख्तियारी होगी। यानि हिन्दुस्तानियों की खुद की हुकुमत होगी। अगर हम अपनी आजादी के लिये दिलोजान से कोशिश करते रहे तो एक न एक दिन दिल्ली के किले पर हमारा झण्डा फिर से लहराएगा। शायद उस दिन को देखने के लिये हम जिंदा रहें या न रहें लेकिन मुझे यकीन है कि हम नहीं तो हमारी औलाद और वो नहीं तो उनके बाद में आने वाली नस्ले एक न एक दिन हिन्दुस्तान को जरूर आजाद देखेंगी।' इसी जज्बे के साथ फिल्म समाप्त हो जाती है। फिल्म के बाद वाले आधे भाग में कहानी

का रूख स्वतंत्रता संग्राम की तरफ हो जाता है।[4] ज्ञातव्य है कि ये फिल्म 1946 में, स्वतंत्रता के पूर्व, आयी थी। फिल्म के मुख्य कलाकार थे सुरेन्द्र, निगार सुल्ताना, सुरैया आदि। फिल्म को काफी पसन्द किया एवं सराहा गया।

1857 के महाविद्रोह को केन्द्र में रखकर स्वतंत्रता के पश्चात् एक फिल्म आयी 'झांसी की रानी'। फिल्म का निर्देशन सोहराब मोदी द्वारा सन् 1953 में किया गया। जैसा कि शीर्षक से ज्ञात है फिल्म 'झांसी की रानी में रानी लक्ष्मीबाई को प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के एक नायक के रूप में प्रस्तुत किया है। इस फिल्म में अग्रेंजों की मक्कारियों, कुचक्रों षडयंत्रों और देशी राज्यों को हड़पने की नीति और दुष्परिणामों का चित्रण किया गया है। फिल्म का मुख्य उद्देश्य तत्कालीन परिस्थितियों को दर्शाना, अंग्रेजों की कूटनीतियों का चित्रण करना एवं स्वतंत्रता के समर में रानी लक्ष्मीबाई की भूमिका पर प्रकाश डालना है। फिल्म में ऐतिहासिक घटनाओं को बखूबी दर्शाया गया है एवं देशभक्ति, राष्ट्रप्रेम एवं

साम्प्रदायिक एकता का संदेश दिया गया है। जोश एवं ओज से भरे संवाद फिल्म को प्रभावशाली बनाते हैं। किन्तु कहीं–कहीं नाटकीय भी लगते है। कुल मिलाकर फिल्म तत्कालीन स्थितियों, परिवेश एवं ऐतिहासिक घटनाओं का चित्रण करती है। फिल्म की मुख्य भूमिकाओं में हैं–महताब (झांसी की रानी), मुबारक (झांसी का राजा), सोहराब मोदी (राजगुरू)।

झांसी की रानी को लेकर 25 जनवरी, 2019 को एक अन्य फिल्म रिलीज हुयी जिसका शीर्षक है 'मणिकर्णिका–द क्वीन ऑफ झांसी। फिल्म का निर्माण जी स्टूडियो द्वारा किया गया एंव फिल्म का निर्देशन कृष द्वारा किया गया है। विवाह पूर्व रानी लक्ष्मीबाई का नाम 'मणिकर्णिका' था। उसी के नाम पर फिल्म का शीर्षक रखा गया है। फिल्म 1857 के भारतीय विद्रोह के दौरान ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी के खिलाफ रानी लक्ष्मीबाई की लड़ाई पर आधारित है। कंगना रनौत मुख्य भूमिका में है। अन्य कलाकारों में जीशु सेनगुप्ता (महाराज गंगाधर राव),

सुरेश ओबराव (पेशवा), कुलभूषण खरबंदा (राजगुरू), डैनी डेंगजोंग्पा (गौस बाबा), अतुल कुलकर्णी (तात्या टोपे), अंकिता लोखंडे (झलकारी बाई) आदि। फिल्म में मणिकर्णिका को अत्यन्त वीर, साहसी एवं आत्मविश्वास से लबरेज दिखाया गया है। पहले ही दृश्य में उसकी भिडंत चीते से होती है। वयस्क होने पर उसका विवाह झांसी के राजा गंगाधर राव नेवलकर से कर दिया जाता है। शीघ्र ही उसकी संतान होती है जिसका नाम दामोदर राव रखा जाता है। दुर्भाग्य से बच्चा जीवित नहीं रह पाता है, जिससे राज्य शोक में डूब जाता है। राजा एवं रानी एक बच्चे को गोद ले लेते है। एक ओर बीमारी से जूझने के बाद राजा गंगाधर राव की मृत्यु हो जाती है तो दूसरी तरफ रानी शासन कार्य संभाल लेती है। रानी का यह संवाद (प्रभावशाली) 'लक्ष्मी विधवा हुई है, उसकी झांसी अभी सुहागन है'। बाकी की फिल्म ब्रिटिश शासन के खिलाफ रानी लक्ष्मी बाई के संघर्ष में बीतती है। वह यह संदेश देती है कि 'हम लड़ेंगे .... ताकि आगे आने वाली

पीढ़ियां अपनी आजादी का उत्सव मनाएं।' इस प्रकार सम्पूर्ण कथानक ऐतिहासिक घटनाओं से प्रेरित है। कहीं–कहीं पर नाटकीय दृश्य भी डाले गये हैं। जो इतिहास से अलग हैं। वस्तुतः इतिहास रानी लक्ष्मी बाई द्वारा अंग्रेजों के साथ लड़ी जाने वाली शौर्यगाथा से भरा पड़ा है। कहानी भी उसकी शौर्यगाथा को दर्शाती है। रानी लक्ष्मीबाई वीरांगना की भांति दिखाई देती है। इसके अतिरिक्त गौस बाबा की स्वामिभक्ति, झलकारी बाई की बहादुरी और कर्तव्यपरायणता, तात्या टोपे का अदम्य साहस जैसे दिलचस्प प्रसंग हैं। कलाकारों ने फिल्म में अच्छा काम किया है। पूरी फिल्म में कंगना रनौत छायी हुयी है। प्रसून जोशी द्वारा लिखित संवादों से फिल्म अत्यंत प्रभावशाली बन गयी है एवं दर्शकों पर छाप छोड़ने में सक्षम है।[6]

सन् 1960 में नाना भाई भट्ट की फिल्म 'लालकिला' आयी। फिल्म ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी के खिलाफ संघर्ष पर आधारित थी। 1857 में हुए स्वतंत्रता के प्रथम आन्दोलन को बखूबी दर्शाया

गया। अंग्रेजी शासन की नीतियों, षड़यंत्रों आदि पर प्रकाश डाला गया। युद्ध आदि के दृश्य भी फिल्माये गये। फिल्म में तत्कालीन ऐतिहासिक घटनाओं को दर्शाने का प्रयास किया गया है। फिल्म के अंत में दिखाया गयाा है कि किस प्रकार कम्पनी शासन की कूटनीतियों के चलते मुगल बादशाह को लाल किला छोड़ना पड़ता है। फिल्म का नायक कहता है कि लालकिले पर भारतीयों का ही अधिकार रहेगा। इसके पश्चात् बहुत ही संक्षेप में 1857 से 1947 तक की कुछ खास घटनाक्रमों की तिथियों को दर्शाकर भारत को आजाद होते दिखाया गया है। स्वतंत्रता के अवसर पर लाल किला पर झण्डा फहराने एवं राष्ट्रगान के साथ फिल्म समाप्त हो जाती है। ऐतिहासिक दृष्टि से फिल्म ठीक है। घटनाक्रमों को दर्शाने के साथ–साथ तत्कालीन परिवेश को ध्यान में रखकर फिल्म बनायी गयी है। फिल्म की प्रमुख भूमिकाओं में जयराज, निरूपा रॉय, एम0कुमार, कमल कपूर, हेलेन आदि हैं।[7]

'शतरंज के खिलाड़ी' 1977 में बनी हिन्दी भाषा की फिल्म है। इसी नाम से हिन्दी के मूर्धन्य साहित्यकार मुंशीप्रेमचन्द ने पूर्व में कहानी की रचना की थी। फिल्म उसी पर आधारित है। फिल्म के निर्देशक हैं प्रसिद्ध बांग्ला फिल्मकार सत्यजीत रे। इसकी कहानी 1856 के अवध के नवाब वाजिद अली शाह के दो अमीरों मिर्जा सज्जाद अली एवं मीर रोशन अली के इर्द–गिर्द घूमती है। इन दोनों ही खिलाड़ियों को शतरंज का इतना जुनून सवार होता है कि उन्हें अपने घर–परिवार, तत्कालीन परिस्थितियों की भी कोई परवाह नहीं रहती। दूसरी तरफ अवध का नवाब वाजिद अली शाह ऐशो–आराम, रंगीनियों में खोया हुआ रहता था, नवाब के दोनों अमीर मिर्जा एवं मीर अंग्रेजों के खिलाफ वाजिद अली शाह के संभावित युद्ध में शामिल होने से बचने के लिये मस्जिद में जाकर शतरंज खेलते हैं और मामूली बात पर आपस में भिड़ जाते है। सूत्रधार के रूप में अमिताभ बच्चन की आवाज का प्रयोग किया गया है। आवश्यकता के अनुरूप एवं

कहानी को रोचक बनाने के लिये कुछ परिवर्तन भी किये गये हैं यथा– मीर और मिर्जा का अंत में मरना न दिखाना, मीर साहब की पत्नी के आशिक अकील की कथा जोड़ना, कैप्टन विल्सन और जनरल आउट्रम की कथा जोड़ना, अब्बा जानी का प्रसंग, कल्लू नाम के लड़के की कथा आदि। ऐतिहासिक दृष्टि से यदि देखा जाए तो ऐतिहासिक घटनाओं के साथ–साथ तत्कालीन राजनीतिक सामाजिक परिवेश का कुशल चित्रण किया गया है। नवाब को कुशल कवि, संगीतकार और नृत्यकार के रूप में दिखाया गया है, जिनकी राजनीतिक मामलों में कोई दिलचस्पी नहीं है। डलहौजी की राज्य हड़पने की नीतियों के अन्तर्गत उन्होंने अंग्रेजों से सन्धि कर रखी थी जिस कारण उन्होंने अपनी सेना नहीं रखी थी। यह भी दर्शाया गया है कि अवध के विलासी लोग व्यर्थ के ऐश–ओ–आराम, रंगरेलियों, तीतर–बटेर–मुर्गे की लड़ाईयों, नशाखोरी आदि में लिप्त हैं। कम्पनी सरकार की नीतियों में न तो उनकी कोई रूचि है एवं न ही वे जागरूक हैं।

सूत्रधार की टिप्पणियों में अवध की सामाजिक स्थिति, राजनीतिक दशा और अवध के विलय के लिये सामंती संस्कृति और अवध के शासक को जिम्मेदार ठहराया गया है। हिन्दी–उर्दु भाषा का प्रयोग किया गया है। कलाकारों के परिधान, अवध की गलियां, तत्कालीन परिवेश आदि फिल्म को प्रभावशाली बनाते हैं एवं तत्कालीन समाज का खांका खींचने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। फिल्म की प्रस्तुति शैली अद्भुत कही जा सकती है और अवध को इसके मूल रूप में पेश करने में सफल कही जा सकती है। फिल्म के मुख्य कलाकार हैं– संजीव कुमार (मिर्ज़ा सज्जाद अली), सईद जाफरी (मीर रोशन अली), शबाना आज़मी (मिर्जा की बीबी), फरीदा जलाल (मीर की बीबी), अमज़द खान (नवाब वाजिद अली शाह), रिचर्ड अचेनबॉरो (जनरल जेम्स आउट्रम) एवं फारूख़ शेख (अक़ील)[8]।

शतरंज के खिलाड़ी की भांति 'जुनून' भी साहित्यक कृति पर आधारित है। 'जुनून' का निर्माण श्याम बेनेगल ने भारत के अंग्रेजी लेखक रस्किन

बॉण्ड के उपन्यास 'ए फ्लाइट ऑफ पिजन्स' के आधार पर किया है। रस्किन बॉण्ड के उपन्यास की प्रस्तावना से ज्ञात होता है कि उपन्यास कुछ वास्तविक पात्रों के जीवन की वास्तविक घटनाओं से प्रेरित होकर लिखा गया है। इस प्रकार उपन्यास का कथानक काल्पनिक नहीं कहा जा सकता है। उपन्यास की नायिका 'रूथ' है। जिसके इर्द–गिर्द कहानी चलती है। लेखक के अनुसार 'रूथ' वास्तविक पात्र है। पेशेवर इतिहासकारों के अनुसार यह फिल्म 1857 की घटनाओं व इतिहास से सीधे सम्बन्धित नहीं है। यद्यपि ऐतिहासिक घटनायें नहीं है तथापि फिल्म के निर्माता शशी कपूर एवं निर्देशक श्याम बेनेगल के अनुसार सन् 1857 का सच्चा चित्रण है। फिल्म की नायिका रूथ लाबदूर (नफीसा अली) रामपुर के नवाब की धेवती की बेटी हैं। उसके पिता की हत्या विद्रोहियों ने कर दी थी। उसका अपहरण फिल्म का नायक जावेद (शशि कपूर) कर लेता है। नायक जावेद भी एक विद्रोही ही है। किन्तु रूथ को

पठान जावेद से प्रेम हो जाता है। जब जावेद अंग्रेजों से लड़ते हुए मारा जाता है तो रूथ लंदन चली जाती है। वास्तव में यह नायक का जुनून है जो स्वतंत्रता के लिये है। फिल्म में तत्कालीन परिस्थितियां दिखाने का प्रयास किया गया है। अवध की सामंती संस्कृति व रूहेलखण्ड की एक छोटी ब्रिटिश छावनी में भड़के विद्रोह को भी दिखाया गया है। प्रेमकथा के माध्यम से 1857 का खांका खींचने का प्रयास किया गया है।[9]

मंगल पाण्डे एक ऐतिहासिक चरित्र है जिसने 29 मार्च 1857 में बंगाल के बैरकपुर स्थित सैनिक छावनी में चर्बी लगे कारतूस का विरोध करते हुए अपने अधिकारी पर गोली चला दी थी। 08 अप्रैल 1857 को बैरकपुर छावनी में अंग्रेजों ने उसे अपराधी मानकर फांसी दे दी थी। इसी घटना को केन्द्र में रखकर फिल्म 'मंगल पाण्डे : दि राइजिंग' फिल्म का निर्माण किया गया। फिल्म में दर्शाया गया है कि यह विद्रोह ''भारतीय स्वतंत्रता के प्रथम संग्राम या सिपाही विद्रोह'' के रूप में जाना जाता

है। फिल्म के केन्द्र में मंगल पाण्डे है किन्तु मंगल पाण्डे से सम्बन्धित जिन घटनाओं को दिखाया गया है, उनके ऐतिहासिक साक्ष्य नहीं प्राप्त होते हैं। जैसे फिल्म में मंगल पाण्डे (अमिर खान) एवं हीरा (रानी मुखर्जी) की प्रेम कथा को दिखाया गया है। साथ ही मंगल पाण्डे एवं कैप्टन विलियम गोर्डन (टॉबी स्टीफन्स) की मित्रता की कहानी भी है। इतिहास में इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता। फिल्म के अन्त में फिल्मकार इतिहास का उदाहरण देकर बताता है कि गोर्डन नाम के अंग्रेज फौजी ने भी भारतीयों की तरफ से इस विद्रोह में भाग लिया था। मंगल पाण्डे के वंशज मंगल पाण्डे एवं हीरा की प्रेमकथा को लेकर कोर्ट गये थे। उनका आरोप था कि फिल्म में दिखायी गयी घटनाओं ने मंगलपाण्डे की छवि को आघात पहुंचाया है। फिल्म में एक स्थान पर मातादीन भंगी का दृश्य है। जिससे ज्ञात होता है कि मुक्ति संग्राम की ज्वाला भले ही मंगल पाण्डे ने भड़काई हो परन्तु उस अग्नि को चिंगारी मातादीन भंगी ने दी थी। महासंग्राम सम्बन्धी इस फिल्म में

दलितों की भूमिका प्रथम बार दर्शायी है। वैसे भी लोक संस्कृति में मंगल पाण्डे को जातीय श्रेष्ठता के अहम को लेकर किसी दलित द्वारा ललकारने की बात पहले से ही प्रचलित है। यह माना जा सकता है मातादीन ही वह प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने 1857 की क्रान्ति के बीज बोए थे। फिल्म में दास प्रथा, सती प्रथा आदि कुरीतियां भी दर्शायी गयी हैं। अफ़ीम की खेती, चीन के बाजारों में उसको बेचे जाने का भी विवरण प्राप्त होता है। इस तरह तत्कालीन परिस्थितियों को दर्शाने का भी प्रयास किया गया है।[10]

इस प्रकार 1857 के स्वतंत्रता संग्राम से सम्बन्धित कुल सात फिल्मों की चर्चा की गयी है। ये फिल्में प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से 1857 के महासमर से सम्बन्धित हैं। लगभग सभी फिल्मों के अंत में देशभक्ति अथवा राष्ट्रीयता की भावना पर बल दिया गया है। कहीं न कहीं ये फिल्में मनुष्य को जोड़कर अथवा बांधकर उस समय में ले जाती हैं, जहां से आजादी का बिगुल बजा था। ये मानव

मस्तिष्क पर अपनी छाप छोड़ती हैं एवं उसे सोचने के लिये विवश करती हैं। इस प्रकार सिनेमा लोगों में जागरूकता लाने का भी सशक्त माध्यम है। यह माना जाता है कि वे घटनायें जो दिखायी पड़ती हैं वे मनुष्य पर सीधे प्रभाव डालती हैं। डॉ0 चन्द्रभूषण गुप्त 'अंकुर' लिखते हैं कि 20वीं सदी में साहित्य की तमाम विधाओं एवं कला के माध्यमों को इतिहास के अंग, उपकरण और स्रोत के रूप में स्वीकारा जा चुका है। फिर सिनेमा, जो कला की सर्वाधिक उन्नत, सम्बन्धित और सामूहिक माध्यम की तरह स्थापित हो चुका है, वह भी इतिहास का एक महत्वपूर्ण स्रोत हो सकता है।[11] सिनेमा में कई सारी विधाओं का समन्वय है। संगीत, चित्रकला, छायांकन आदि। सिनेमा के माध्यम से अपने गौरवशाली इतिहास को उजागर करने का प्रयास किया जा सकता है। जिससे युवा पीढ़ी को ऐतिहासिक पक्षों से अवगत कराया जा सके एवं इसके प्रति जागरूक किया जा सके।

संदर्भः

1 चन्द्रभूषण गुप्त 'अंकुर', सिनेमा और इतिहास, पृ0 27, 2012, साहिबाबाद, गाजियाबाद (उत्तर प्रदेश)

2 वही पृष्ठ

3 देखें, कंगना रनौत एवं राधाकृष्ण जगरलमूडी निर्देशित फिल्म 'मणिकर्णिका : द क्वीन ऑफ झांसी, 2019

4 देखें मोहन सिन्हा द्वारा निर्मित फिल्म '1857', 1946

5 https://m.imdb.com

6 https://m.hindigeetmala.net

7 देखें, सोहराब मोदी द्वारा निर्देशित फिल्म 'झांसी की रानी', 1953

8 देखें, मणिकर्णिका : द क्वीन ऑफ झांसी, 2019

9 https://m.imdb.com

10 https://navbharattimes.india.com

11 देखें, नानाभाई भट्ट की फिल्म 'लाल किला', 1960

12 https://m.imdb.com

13 https://navbharattimes.india.com

14 देखें, सत्यजीत रे निर्देशित फिल्म 'शतरंज के खिलाड़ी, 1977

15 देखें, श्याम बेनेगल निर्देशित फिल्म 'जुनून', 1978

16 https://thehindu.com

17 https://arthousecinema.in

18 देखें, केतन मेहता की फिल्म 'मंगल पाण्डे : द राइजिंग, 2005 चन्द्रभूषण गुप्त 'अंकुर, पूर्वोद्धत, पृ0 29–30

19 चन्द्रभूषण गुप्त 'अंकुर, पूर्वोद्धत, पृ0 10–11

ISBN: 978-81-951568-9-4

आजादी की गुमनाम वीरांग. ना–वेलु नच्चियार

नीता सोनकर

असिस्टेंट प्रोफेसर–इतिहास

डॉ0 अम्बेडकर राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय ऊँचाहार, रायबरेली

आज़ादी के 75वें पुनीत अवसर पर उन वीरों और वीरांगनाओं को स्मरण करने का पावन अवसर है जिन्होंने अपने प्राण मातृभूमि की रक्षा हेतु समार्पित कर दिया किन्तु अतीत के पन्नों में उनका उल्लेख नगण्य मिलता है।

भविष्य की असीम संभावनाओं के नूतन सपने सजाए हुए हम स्वतन्त्रता का 75वां वर्ष और आज़ादी का अमृत महोत्सव मना रहे हैं। हमारी यह आज़ादी अनेक वीरों और वीरांगनाओं के रण का परिणाम है, जिनके प्रति हम देशवासी सदैव ऋणी रहेंगे।

देश के स्वाधीनता संग्राम में अनेक ऐसे वीर और वीरांगनाएं हुई हैं, जिनके त्याग और बलिदान को इतिहास में भुला दिया गया है–ऐसी ही एक वीरांगना थी 'वेलु नच्चियार'।

18वीं शताब्दी में शिवगंगा की इस वीरांगना ने पहली बार ब्रिटिश साम्राज्य के खिलाफ जंग लड़ी थी। उन्हें तमिलनाडु में 'वीरमंगई' (बहादुर स्त्री) के नाम से जाना जाता है। उनके बारे में इतिहासकरों ने न के बराबर लिखा है। क्षेत्रीय इतिहासकारों के लेखों से हमें उनके बारे में जानकारी मिलती है।

राजकुमारी वेलु का जन्म 03 जनवरी 1730 ई0 को रामनाथपुरम् (तमिलनाडु) में रामनाद साम्राज्य के राजा चेल्लामुतहू विजयाराघुनाथ सेतुपति और

रानी सक्धिममुथल सेतुपति की एकमात्र संतान के रूप में हुआ था, उनका पालन–पोषण राजकुमारों की भांति किया गया। उन्हें तलवारबाजी, तीरंदाजी, घुड़सवारी, युद्धनीति के साथ–साथ स्थानीय भाषा, फ्रेंच, उर्दू तथा अंग्रेजी की शिक्षा दी गई। उनका विवाह 16 वर्ष की आयु में शिवगंगा के राजा मुथुवादुग्नाथापेरिया उदायियाथेवर से हुआ था, इस विवाह से उनकी एक पुत्री वेल्लची का जन्म हुआ।

1772 ई0 में आरकोट के नवाब मो0 अली खान वाल्जाह और ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने मिलकर शिवगंगा पर आक्रमण किया। राजा उदायियाथेवर युद्ध करते हुए वीरगति को प्राप्त हुए। वेलु को अपनी नवजात पुत्री के साथ आठ वर्षों तक डिंडीगुल के जंगलों मे छिपकर रहना पड़ा। वीर मरूदु भाईयों और वीरांगना उदियाल ने उसकी रक्षा की। डिंडीगुल में ही उनकी मुलाकात मैसूर के शासक हैदर अली से हुई, हैदर अली वेलु की बुद्धिमत्ता से अत्याधिक प्रभावित हुए।

वेलु ने मैसूर के शासक हैदर अली के सहयोग से अपनी स्वयं की सेना संगठित की और गोपाला नायकरए हैदर अली तथा मरूदु भाईयों के साथ मिलकर अंग्रेजों से लोहा लिया। उसने महिलाओं की भी एक सेना का निर्माण किया जिसका नाम था–उदियाल। इन सभी विश्वास पात्रों के साथ रानी वेलु ने शिवगंगा के प्रांतों को जीतना प्रारम्भ किया और किले के निकट पहुँच गई, उसकी आँखों मे पीड़ा और प्रतिशोध की ज्वाला थी। किले को भेदना आसान नहीं था। विजयदशमी का अवसर था। योजना के अनुसार उदियाल सेना की प्रमुख कुयिली चुनिंदा वीर महिला सैनिकों के साथ ग्रामीण महिलाओं के वेश धारण कर अंग्रेजों के किले पर आक्रमण कर दिया। अंग्रेज कुछ समझ पाते उससे पहले ही वीरांगनाओं ने रक्षकों को मारकर किले का दरवाजा खोल दिया। रानी वेलु प्रलय बनकर अंग्रेजों पर टूट पड़ी। इसी दौरान कुयिली को अंग्रेजों के गोला बारूद के भण्डार का पता लगा। इस वीरांगना ने मंदिर में रखे हुए घी को अपने शरीर पर उड़ेल

दिया और स्वयं को आग लगा ली। अग्नि बरसाती हुई वह अंग्रेजों के गोला बारूद भण्डार में घुस गई और उसे नष्ट कर दिया। मातृभूमि की रक्षा के लिए इस तरह का आत्मबलिदान संभवतः इतिहास की प्रथम घटना थी। अंततः अंग्रेजों ने घुटने टेक दिए यह घटना 1780 की है।

वेलु नचियार उन वीरांगनाओं में से थीं जिन्होंने न सिर्फ अपने राज्य को पुनः प्राप्त किया बल्कि 10 वर्षों तक शिवगंगा पर शासन भी किया। उन्होंने अपनी पुत्री वेल्लची का अपना उत्तराधिकारी बनाया। 25 दिसंबर 1796 में उसकी मृत्यु हो गई।

वह पहली महिला क्रांतिकारी रानी थी जिन्होंने अंग्रेजों के खिलाफ स्वतन्त्रता की जंग लड़ी। 1857 की क्रांति जिसे देश का प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम माना जाता है उसके बहुत पूर्व ही इस वीरांगना ने अंग्रेजों के अभिमान को धूमिल कर दिया था, लेकिन इस वीरांगना का नाम इतिहास के

पन्नों से कहीं गुम हो गया। क्षेत्रीय इतिहासकारों ने ही यदा–कदा उनका उल्लेख किया है।

भारत सरकार ने 2008 मे ंरानी वेलु नाच्चियार की स्मृति में रू0 500 का डाक टिकट जारी किया।

निष्कर्ष

वेलु नाच्चियार और कुयिली के ऐतिहासिक उदाहरण हमें यह बताते हैं कि महिलायें अबला न होकर देश और उसकी सीमाओं की रक्षा करने के लिए तथा किसी भी परिस्थिति का सामना निडरता से कर सकती है। उन्होंने भारतीय महिलाओं के सामाजिक राजनैतिक प्रतिमानों और सांस्कृतिक आदर्शों की जटिल संरचना को प्रस्तुत किया है।

सन्दर्भ

1 www.lokmatnews.in

2 https//kreately.in/Indians-first woman Freedom Fighter

3 http//pritammdpr.blogpost.com

4 Wikipedia.org

5 indianculture.gov.i n 1780-1790

6 इण्डिया पोस्ट–स्टैम्प 2008, डाक विभाग, भारत सरकार

7 समाचार मिनट–3 जनवरी 2017

8 द हिंदू – woman who made a difference

ISBN: 978-81-951568-9-4

आजादी के लिए कृषकों के विद्रोह और आन्दोलन

डॉ0 नीरज कुमार

सहायक प्रोफेसर – हिन्दी विभाग

डॉ0 अम्बेडकर राजकीय स्नातकोत्तर

महाविद्यालय, ऊँचाहार, रायबरेली

आज जब देश आजादी की 75वीं वर्षगांठ मना रहा है और भारत सरकार इस अवसर को आजादी का अमृत महोत्सव के रूप में मनाने के लिए विभिन्न कार्यक्रमों की श्रृंखला आयोजित कर देश की आजादी के लिए शहीद हुए वीरों को श्रद्धांजलि दे रही है, वहीं असंख्य जाने

अनजाने लोगों के संघर्षों को सम्पूर्ण देश याद कर श्रद्धासुमन अर्पित कर रहा है। देश की आजादी के लिए संघर्ष करने में तो सभी महान स्वतन्त्रता सेनानियो ंका महान योगदान था ही साथ ही इसमें देश की जनता ने भी बड़ी भूमिका निभाई थी, जिसमें मजदूर, किसान आदिवासी सभी सम्मिलित थे। देश को आजादी प्राप्त होना कोई एक दिन के संघर्ष का परिणाम नहीं था वरन यह संघर्ष की लम्बी प्रक्रिया थी। इस लम्बे संघर्ष में भारतीय किसानों ने समय– समय पर जो विद्रोह और आन्दोलन किए उसने ब्रिटिश शासन की चूलें हिला दी।

1857 के असफल विद्रोह के बाद विरोध का मोर्चा किसानों ने ही संभाला, क्योंकि अंग्रेजों और देशी रियासतों के सबसे बड़े आन्दोलन उनके शोषण से ही उपजे थे। हकीकत में देखे तो जितने भी किसान आन्दोलन हुए उनमें से अधिकांश अग्रेजों के खिलाफ थे। देश में नील पैदा करने वाले किसानों का आन्दोलन पावना विद्रोह, तेभागा आन्दोलन,

चम्पारण का सत्याग्रह और बारदोली में प्रमुख आन्दोलन हुए। किसान आन्दोलन और विद्रोहों के प्रमुख कारणों में जमींदारी क्षेत्रों में उच्च लगान अवैध करारोपण, मनमानी बेदखली, अवैतनिक श्रम और इसके अलावा सरकार ने भारी भू–राजस्व भी लगाया। आन्दोलनों का उदय तब हुआ जब ब्रिटिश आर्थिक नीतियों के परिणामस्वरूप पारम्परिक हस्तशिल्प और अन्य छोटे उद्योगों का दमन हुआ, जिससे पारम्परिक व्यवसाय में परिवर्तन हुआ तथा किसानों पर कृषि भूमि का अत्यधिक बोझ और कर्ज बढ़ा एवं किसानों की गरीबी में वृद्धि हुई। ब्रिटिश सरकार की आर्थिक नीतियां जमीदारों और साहूकारों के पक्ष में थी तथा किसानों का शोषण करती थी। इस अन्याय के खिलाफ किसानों ने कई–कई अवसरों पर विद्रोह भी किया।

नील विद्रोह(1859–62)

अपने मुनाफे को बढ़ाने के लिए यूरोपीय बागान मालिकों ने किसानों को खाद्य फसलों के

बजाय नील की खेती करने के लिए बाध्य किया। नील की खेती से किसान असंतुष्ट थे क्योंकि नील की खेती के लिए कीमत कम मिलती थी। नील की खेती लाभदायक नहीं थी। नील की खेती से भूमि की उर्वरा शक्ति कम हो जाती थी। परिणाम स्वरूप उन्होने बंगाल में नील की खेती न करने के लिए आन्दोलन शुरू कर दिया। उन्हे प्रेस और मिशनरियों का समर्थन प्राप्त था। हरीशचन्द्र मुखर्जी ने अपने अखबार 'द हिन्दू पैट्रियट' में बंगाल के किसानों की दुर्दशा का मार्मिक वर्णन किया है। दीनबन्धु मित्र ने अपने नाटक 'नीलदर्पण' में नील की खेती करने वाले भारतीय किसानों के साथ किए जाने वाले व्यवहार का मार्मिक वर्णन किया है इसके परिणाम स्वरूप सरकार ने एक नील आयोग नियुक्त किया और 1860 में एक आदेश जारी किया जिसमें रैय्यतों को नील की खेती करने के लिए मजबूर करना अवैध था। यह किसानों की जीत का प्रतीक था।

पाबना आन्दोलन (1870–85)

पूर्वी बंगाल के बड़े हिस्से में जमीदार गरीब किसान से अक्सर बढ़ाए गए लगान और भूमि करों को जबरदस्ती वसूलते थे। जबकि वर्ष 1859 में एक अधिनियम के अन्तर्गत किसानों को अपनी भूमि पर अधिभोग के अधिकार से भी रोका गया था। मई 1873 में पटना (पूर्वी बंगाल) के पाबना जिले के युसुफशाही परगना में एक कृषि लीग का गठन किया गया। इनके द्वारा हड़तालें आयोजित की गई, धन जुटाया गया जिससे संघर्ष पूरे पटना और पूर्वी बंगाल के अन्य जिलों में फैल गया। यह लड़ाई 1885 तक जारी रही लेकिन जब सरकार ने बंगाल काश्तकारी अधिनियम द्वारा अभियोग अधिकारों में वृद्धि कर दी जिससे यह समाप्त हो गया।

दक्कन का विद्रोह

इस आन्दोलन की शुरूआत दिसम्बर 1874 में महाराष्ट्र के षिरूर तालुका के करडाह गांव से हुई। दरअसल एक सूदखोर कालूराम ने किसान बाबा

साहेब देषमुख के खिलाफ अदालत से घर की नीलामी की डिक्री प्राप्त कर ली। इस पर किसानों ने साहूकारों के विरूद्ध आन्दोलन शुरू कर दिया। खास बात यह है कि वह आन्दोलन एक दो स्थानों तक सीमित नही रहा वरन देश के विभिन्न भागों में फैला।

कूका विद्रोह

सन् 1872 में पंजाब के कूका लोगों द्वारा किया गया यह एक सषस्त्र विद्रोह था। कृषि सम्बन्धी समस्याओं तथा अग्रेजों द्वारा गायों की हत्या को बढ़ावा देने के विरोध में यह आन्दोलन किया गया था।

रामोसी किसानों का विद्रोह

महाराष्ट्र में वासुदेव बलवंत फड़के के नेतृत्व में रामोसी किसानों ने जमीदारो के अत्याचारों के विरूद्ध विद्रोह का बिगुल फूंका था।

चम्पारण किसान आन्दोलन (1917)

यह आन्दोलन तिनकठिया प्रणाली के विरोध में बिहार के चम्पारण नामक स्थान पर 1917 में शुरू हुआ था। इस पद्धति में चम्पारण के किसानों से अंग्रेज बागान मालिकों द्वारा जमीन के 3/20 वें हिस्से पर नील की खेती करना अनिवार्य था। 19वीं शती के अन्त में रासायनिक रंगों की खोज और उनके प्रचलन से नील के बाजार समाप्त हो गए। परन्तु बागान मालिकों ने नील की खेती बंद कराने के लिए किसानों से अवैध वसूली की।

इस आन्दोलन में स्थानीय नेताओं ने गांधीजी को आमंत्रित किया। गांधी जी के आने के बाद यह आन्दोलन राष्ट्रीय चर्चा का विषय बन गया। सरकार तथा बागान मालिकों को किसानों का पक्ष सुनना पड़ा। सरकार ने इस आन्दोलन को शांत करने के लिए एक आयोग का गठन किया जिसमें गांधी जी को भी सदस्य बनाया गया और बागान मालिक अवैध वसूली का 25% वापस करने को विवश हुए।

खेड़ा आन्दोलन (1918)

यह आन्दोलन 1918 में खेड़ा (गुजरात) में तब आरम्भ हुआ जब सरकार फसल बर्बाद होने के उपरान्त भी कर वसूली कर रही थी। इस आन्दोलन का नेतृत्व गांधी जी तथा सरदार बल्लभ भाई पटेल ने किया था। इस आन्दोलन को शांत करने के लिए गांधी जी ने कहा कि लगान देने में अक्षम किसानों से वसूली नहीं की जाए। जबकि लगान देने में सक्षम किसान स्वेच्छा से पूरा लगान देगें।

मोपला किसान विद्रोह (1921)

यह किसान विद्रोह ज़मीदारों के विरूद्ध था। चूंकि मोपला किसान मुस्लिम समुदाय से थे तथा ज़मीदार हिन्दू समुदाय से सम्बन्धित थे। अतः उपनिवेषी सरकार द्वारा इसे साम्प्रदायिक रंग देने का प्रयास किया गया। प्रारम्भ में यह विद्रोह अंग्रेज हुकुमत के खिलाफ था। महात्मा गांधी, शौकत अली, मौलाना अबुल कलाम आजाद जैसे नेताओं का सहयोग इसे प्राप्त था। इस आन्दोलन के मुख्य नेता

'अली मुसलियार' थे। यह आन्दोलन असहयोग तथा खिलाफत आन्दोलन के समकालीन था।

उत्तर प्रदेश में किसान आन्दोलन

होमरूल लीग के कार्यकर्ताओं के प्रयास तथा मदन मोलन मालवीय के दिशानिर्देशों के परिणामस्वरूप फरवरी सन् 1918 में उत्तर प्रदेश किसान सभा का गठन किया गया। सन् 1919 के अन्तिम दिनों में किसानों का संगठित विद्रोह खुलकर सामने आया। इस संगठन को जवाहर लाल नेहरू का भी नैतिक समर्थन प्राप्त था।

उत्तर प्रदेश के हरदोई, बहराइच एवं सीतापुर जिलो में लगान वृद्धि एवं उपज के रूप में लगान वसूली को लेकर अवध के किसानों ने 'एका आन्दोलन' नामक आन्दोलन चलाया।

बारदोली सत्याग्रह(1928)

यह आन्दोलन भी लगान में बढ़ोत्तरी के कारण आरम्भ हुआ था। इसमें सरदार वल्लभ भाई

पटेल एक कुषल नेता के रूप में उभरे। इसमें उन्होने लगान का बहिष्कार किया तथा लगान देने वाले किसानों का भी सामाजिक बहिष्कार किया।

तानाभगत आन्दोलन(1914)

लगान की ऊँची दर तथा चौकीदारी कर के विरूद्ध ताना भगत आन्दोलन की शुरूआत 1914 में बिहार में हुई। इस आन्दोलन के प्रवर्तक जतरा भगत थे।

अखिल भारतीय किसान सभा

1923 में स्वामी सहजानन्द ने बिहार किसान सभा का गठन किया था। 1928 मे आंध्र रैय्यत सभा की स्थापना एन0जी0रंगा ने की। उड़ीसा में मालती चौधरी ने उत्कल प्रान्तीय किसान सभा की स्थापना की। बंगाल मे कृषक प्रजा पार्टी तथा 1935 में संयुक्त में किसान संघ भी स्थापना हुई। इसी वर्ष सभी प्रान्तीय किसान सभाओं को मिलाकर एन0 जी0 रंगा तथा अन्य किसानों ने एक अखिल भारतीय

किसान सभा की स्थापना की। जिसका पहला अधिवेशन 1936 में हुआ।

तेभागा आन्दोलन (1946)

सन् 1946 का बंगाल तेभागा आन्दोलन सर्वाधिक सषक्त आन्दोलन था, जिसमें किसानों ने 'फ्लाइड कमीशन' की सिफारिश के अनुरूप लगान की दर घटाकर एक तिहाई करने के लिए संघर्ष शुरू किया था।

बंगाल का 'तेभागा आन्दोलन' फसल का दो तिहाई हिस्सा उत्पीडित बटाईदार किसानों को दिलाने के लिए किया गया था। इस आन्दोलन के नेता कंपराम सिंह एंव भवन सिंह थे।

तेलंगाना आन्दोलन (1946)

उस समय तेलंगाना हैदराबाद रियासत का अंग था। यह आन्दोलन 1946 हैदराबाद के निजाम की नीतियों के विरूद्ध कम्यूनिस्ट पार्टी द्वारा आरम्भ किया था।

किसान आन्दोलनों का महत्व

भारतीय स्वतन्त्रता संघर्ष में किसान आन्दोलनो की भूमिका अति महत्वपूर्ण है। किसान आन्दोलनों ने आजादी के लिए जारी संघर्ष की धार को तेज करने का कार्य किया। कई बार किसान आन्दोलनों ने राष्ट्रीय आन्दोलनों की शून्यता को भरा है। उदाहरण– 1857 के विद्रोह से 1885 में कांग्रेस की स्थापना तक नील विद्रोह, पाबना विद्रोह तथा दक्कन विद्रोह हुए।

किसान आन्दोलनों ने महात्मा गांधी, सरदार पटेल, राजेन्द्र प्रसाद जैसे नेताओं को जन नेतृत्वकर्ता के रूप में स्थापित किया। इन्होंने स्वतन्त्रता उपरान्त कृषि सुधारों के लिए उपयुक्त वातावरण तैयार किया जैसे ज़मीदारीउन्मूलन। इन आन्दोलनों ने किसानों तथा अन्य लोगों को औपनिवेशिक शासन के विरूद्ध प्रेरित किया।

निष्कर्षतः उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर स्पष्ट है कि आजादी के आन्दोलनों में भारतीय

किसानों तथा समय समय पर उनके द्वारा किए आन्दोलनों/विद्रोहों ने ब्रिटिष शासन की जड़ों को कमजोर कर उखाड़ने में अपनी महती भूमिका का निर्वहन किया। वो ऐसे नायक है जिनकी गाथाओं को जितना बखान किया जाए उतना कम ही है।

संदर्भ

1 भारत का आधुनिक इतिहास, बी० एल० ग्रोवर, प्रो० यशपाल

2 भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, विपिन चन्द्र

3 आधुनिक भारत का इतिहास एवं विरासत, पी० एल० गौतम

4 आधुनिक भारत का इतिहास, सुमित सरकार

ISBN: 978-81-951568-9-4

उग्रवादी विचारधारा राष्ट्रीय आंदोलन का बदलता स्वरूप

धीरेन्द्र कुमार सिंह

सहायक प्राध्यापक (शिक्षा संकाय)

गुरू घासीदास केन्द्रीय विश्वविद्यालय

बिलासपुर, छत्तीसगढ़

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में उग्रवादी विचारधारा का अपना विशेष महत्व है। यद्यपि तत्कालीन समय में उग्रवादी विचारधारा और उदारवादी विचारधारा दोनों का उद्देश्य एक ही था, वह उद्देश्य था स्वराज्य की प्राप्ति। परन्तु दोनों की कार्य पद्धति में अन्तर था। उदारवादी विचारधारा अपने नाम के

अनुकूल उदार पद्धति में विश्वास करती थी, वहीं उग्रवादी विचारधारा की कार्य पद्धति उग्र थी। उदारवादियों की प्रार्थना और याचना पद्धति को इन्होंने भिक्षावृत्ति का नाम दिया।

उग्रवादी विचारधारा के प्रमुख नेता थे, बालगंगाधर तिलक, लाला लाजपत राय, विपिनचन्द्र पाल एवं अरविन्द घोष। सुभाषचन्द्र के क्रिया–कलाप से भी उग्रवादी विचारधारा की झलक मिलती है। इन नेताओं ने तत्कालीन भारतीय राजनीति को एक नया स्वरूप प्रदान किया। राष्ट्रीय जीवन की रागिनी में एक नया स्वर भरा। राष्ट्रीय आंदोलन को एक नयी दिशा प्रदान की। ये क्रांति पर विश्वास करते थे।

"यह नेता उग्रवादी कहलाए क्योंकि उनका दृष्टिकोण उदार अथवा सुधारवादी न होकर क्रांतिकारी था। वे ब्रिटिश साम्राज्यवाद का सक्रिय विरोध करने पर जोर देते थे। उनका विश्वास था कि हाथ–पाँव जोड़कर अंग्रेजों से प्रार्थनाएँ करने

तथा स्वतंत्रता की भीख माँगने से कभी स्वतंत्रता नहीं मिल सकती। उसके लिए स्वावलम्बन, संगठन और संघर्ष की आवश्यकता होती हैं।''[1]

1906 से 1919 तक में उग्रवादी विचारधारा अपनी लोकप्रियता के चरम सीमा पर थी। किन्तु 1919 से गाँधीवादी युग की शुरुआत हो चुकी थी। परन्तु बीच–बीच उग्रवादी विचारधारा अपना प्रभाव छोड़ती जा रही थी। भगत सिंह, सुखदेव और राजगुरु के शहादत को देश भूल नहीं सकता है। इंकलाब जिंदाबाद का नारा देते हुए जो फाँसी के फंदे पर लटक गए। ऐसा लगता है कि ''इस विचारधारा के नेताओं का उद्देश्य मात्र वरिष्ठ संरक्षकों की आलोचना करना नहीं था, वरन्, निःसंदेह उनकी यह इच्छा थी कि साम्राज्यवाद के साथ समझौता–परस्त नीतियों को त्याग कर उसके विरुद्ध निर्णायक व अनवरत संघर्ष का मार्ग अपनाया जाए।[2]

बाल गंगाधर तिलक ने कहा था कि स्वराज्य मेरा जन्म सिद्ध अधिकार है और मैं इसे लेकर रहूँगा। यह एक छोटा सा वाक्य अपने अंदर असीम शक्ति समाहित किये हुए था। भारतीय जनता के अंदर इसने असीम शक्ति का संचार किया। भारतीय जनता महसूस करने लगी कि स्वराज्य पाना उनका अधिकार है, स्वराज्य उन्हें भिक्षावृŸा के रूप में नहीं चाहिए। बालगंगाधर तिलक ने केसरी और मराठा पत्रिका के माध्यम से राष्ट्रवाद की भावना जाग्रत करने की कोशिश की। इन पत्रिकाओं के माध्यम से इन्होंने स्वदेशी, स्वराज्य और बहिष्कार के संदेश को जन–जन तक पहुँचाया।

महात्मा गाँधी ने इनके बारे में कहा कि ''हमारे समय के किसी भी व्यक्ति का जनता पर इतना प्रभाव नहीं पड़ा जितना तिलक का –––––– स्वराज्य के संदेश का, किसी ने इतने आग्रह से प्रचार नहीं किया, जितना लोकमान्य ने।''[3]

उग्रवादी सक्रिय विरोध और सत्याग्रह में अटूट विश्वास करते थे। उन्होंने भारतीय जनता को निर्भयता का संदेश दिया। उन्होंने भारतवासियों के अन्दर आत्म विश्वास भरने की कोशिश की इस सम्बन्ध में विपिनचन्द्र पाल ने कहा है कि ''यदि सरकार स्वतः स्वराज का दान करती है तो मैं उसे धन्यवाद दूँगा, लेकिन मैं उसे स्वीकार नहीं करूँगा, जब तक कि मैं उसे स्वयं हासिल न कर पाऊँ।''

उग्रवादी चाहते थे कि ब्रिटिश सरकार के न्याय व्यवस्था को लेकर जो भ्रांति भारतीय जनता के मन में व्याप्त है, उससे वह बाहर निकलें और उनकी वास्तविकता को पहचानें।

''उग्रवादियों के लिए स्वराज्य केवल राजनीतिक ही नहीं बल्कि नैतिक और धार्मिक आवश्यकता थी और इसे प्राप्त करना उनका सर्वोपरि एवं पवित्र लक्ष्य था।''[4]

उग्रवादी विचारधारा में भी दो तरह के लोग देखने को मिलते हैं–

(i) क्रांतिकारी (ii) उग्रवादी

तत्कालीन भारतीय समाज में उग्रवाद के उदय के अनेक कारण थे, जिनमें से प्रमुख हैं–

(i) उदारवादियों के तरीकों की असफलता

(ii) ब्रिटिश सरकार की प्रतिक्रियावादी नीति

(iii) आर्थिक दुर्दशा

(iv) प्रवासी भारतीयों के साथ दुर्व्यवहार

(v) लार्ड कर्जन की प्रतिक्रियावादी नीति और बंगाल का विभाजन

(vi) प्लेग के समय शासन की शिथिल नीति

(vii) देश के बाहर की घटनाएँ

(viii) धार्मिक राष्ट्रवाद

(ix) पाश्चात्य क्राान्तिकारी सिद्धांतों का अभाव[5]

लार्ड कर्जन के शासनकाल में दमनकारी नीति अपने चरम सीमा पर पहुँच गयी थी। लार्ड कर्जन ने कहा था कि ''भारत राष्ट्र नाम की कोई वस्तु नहीं हैं। इसका जवाब भारतीय जनता ने 1905 के बंग–बंग आंदोलन में दिया। सम्पूर्ण भारत एक साथ खड़ा हो गया।

अरविन्द का राष्ट्रवाद उग्र एवं आध्यत्मिक दोनों था। प्रारम्भ में वह उग्र राष्ट्रवाद के पोषक थे और बाद में वह पांडिचेरी जाकर आध्यात्म की ओर झुक गए। उनके अनुसार राष्ट्रवाद अजर अमर है। यह कोई मानवीय वस्तु नहीं है, बल्कि प्रत्यक्ष ईश्वर है और ईश्वर को मारा नहीं जा सकता।

''लाला लाजपतराय का राष्ट्रवाद संकीर्णता पर आधारित नहीं था। वे न्याय, स्वतंत्रता और समानता के आकांक्षी थे तथा जाति और रंग पर आधारित भेद–भावों से उन्हें घृणा थी। ब्रिटिश

सरकार द्वारा जो भेद–नीति निकृष्ट रूप में चलाई जा रही थी, उससे लाजपत राय को बड़ा क्षोभ और आक्रोश था। लाजपत राय भारतीय राष्ट्रवाद के उदय को कर्जन, लिटन आदि ब्रिटिश साम्राज्यवादियों की प्रतिवादी नीति के रूप में देखते थे। उनकी धारणा थी कि अंग्रेजों की दमन नीति ही विशेष रूप से इस बात के लिए उत्तारदायी थी, कि भारत में आतंकवादी और उग्रवादी तत्वों का उदय हुआ। एक सच्चे सेनानी के रूप में विदेशी हुकूमत के दमन नीति का उन्होंने डटकर विरोध किया और ललकार की हर राष्ट्र को स्वतंत्र तथा सम्प्रभुतापूर्ण होने का अधिकार हैं।''[6]

किसी भी समाज का मध्यम वर्ग काफी शक्तिशाली होता है। समाज को बदलने की असीम शक्ति इसके अंदर समाहित होती है। उग्रवादी विचारधारा ने समाज के मध्यम वर्ग को काफी आकर्षित किया। ''निःसंदेह उग्रवादी प्रवृत्ति ने भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन की धारा ही बदल दी। यह मध्यम वर्ग के अभ्युदय का प्रतीक थी तथा

इसने उपनिवेश–विरोधी राष्ट्रवाद के आधार को व्यापक बना दिया।''[7]

शिक्षा मानव जीवन की दिव्य ज्योति है। यह मनुष्य को अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाती है। भारत में उग्र राष्ट्रवाद के विकास में शिक्षा ने भी महत्तवपूर्ण भूमिका निभायी। ''जब भारतीयों ने अंग्रेजी भाषा और सामान्य शिक्षा पद्धति के माध्यम से मेजिनी, वर्क, गैरीबाल्डी और वाशिंगटन के स्वतंत्रता के लिए प्रेरित करने वाले भाषण पढ़े, अमेरिका का स्वतंत्रता युद्ध, आयरलैण्ड का संघर्ष, इंग्लैण्ड की गौरवपूर्ण क्रान्ति का इतिहास पढ़ा तो वे स्वतंत्रता की ओर बढ़े और उनके द्वारा उग्र राष्ट्रीयता का मार्ग अपना लिया गया।''[8]

उग्रवादी विचारकों ने अतीत की गौरवशाली परम्परा को हमारे सामने रखा। उन्होंने भारतवासियों को एहसास कराया कि हमारी सभ्यता कितनी समृद्ध एवं सम्पन्न रही है। भारत को गुलाम बनना शोभा नहीं देता। इनका मानना था कि पश्चिमी

साम्राज्य केवल पश्चिमी हिंसक साधनों से ही समाप्त किया जा सकता हैं।

वारिसाल सम्मेलन के बाद 22 अप्रैल 1906 ई0 को अखबार 'युगान्तर' ने लिखा–''उपाय तो स्वयं लोगों को पास है। उत्पीड़न के इस अभिशाप को रोकने के लिए भारत में रहने वाले 30 करोड़ लोगों को अपने 60 करोड़ हाथ उठाने होंगे। बल को बल द्वारा ही रोका जाना चाहिए।''[9]

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि उग्रवादी विचारधारा ने राष्ट्रीय आन्दोलन को नया स्वरूप प्रदान किया जो जोश एवं ताजगी से भरा हुआ था। इसने आंदोलन को तीव्र गति प्रदान की। इन्होंने बताया कि राजनीतिक अधिकारों के लिए संघर्ष करना पड़ेगा। भगत सिंह ने कहा कि ''मानव का रक्त बहाना हमें दुःखी करता है, लेकिन एक समय ऐसा भी आता है जब स्वतन्त्रता की खोज में ऐसा करना अपरिहार्य हो जाता हैं।''[10]

संदर्भ

1 सुभाष कश्यप– ''भारत का सांविधानिक विकास और स्वाधीनता संघर्ष'' पृष्ठ 59

2 R.P. Dutt India Today P. 322

3 डॉ0 अमरेश्वर अवस्थी, डॉ0 रामकुमार अवस्थी– ''भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन'' रिसर्च पाब्लिकेशन्स, पृष्ठ 249

4 वही, पृष्ठ–241

5 वही, पृष्ठ–239

6 वही, पृष्ठ–288

7 डॉ0 जे0 सी0 जौहरी– 'भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन एवं भारत का संविधान' एस0 बी0 पी0 डी0 पब्लिकेशन्स–2021, पृष्ठ–30

8 डॉ0 पुखराज जैन– ''राजनीतिविज्ञान'' साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा–2021, पृष्ठ–21

9 एस0 के0 पाण्डे– 'आधुनिक भारत' प्रयाग एकेडमी पब्लिकेशन एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, 2014,पृष्ठ–316

10 डॉ0 जे0 सी0 जौहरी– 'भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन एवं भारत का संविधान' एस0 बी0 पी0 डी0 पब्लिकेशन्स 2021, पृष्ठ–34

ISBN: 978-81-951568-9-4

आजादी के लिए क्रांतिकारी कदम

डॉ0 श्रीमती सुशमा

असिस्टेंट प्रोफेसर

संस्कृत विभाग

डॉ अम्बेडकर राजकीय स्नातकोत्तर

महाविद्यालय ऊंचाहार, रायबरेली।

भारत को मुक्त कराने के लिए विद्रोह की एक अखंड परंपरा रही है। भारत में अंग्रेजी राज्य की स्थापना से ही सशस्त्र विद्रोह प्रारंभ हो गया था। भारत की स्वतंत्रता के लिए अंग्रेजों के विरुद्ध

दो प्रकार का आंदोलन था– एक अहिंसक आंदोलन एवं दूसरा सशस्त्र क्रांतिकारी आंदोलन यद्यपि भारत के उदार पंथी नेता ब्रिटिश न्याय एवं सदाचार में पूर्ण विश्वास रखते थे। किंतु वे नागरिकों के अधिकार व जनता के दमन के लिए अंग्रेज शासकों की आलोचना करने से भी नहीं चूकते थे। बंग–भंग आंदोलन लॉर्ड कर्जन के समय में उन्होंने उनके शासन को पागल साम्राज्य और दमन व आतंकी शरारत भरी नीति कहकर उनकी आलोचना की थी। 1905 के काफी अधिवेशन में एक महान नेता गोपाल कृष्ण गोखले बंगाल विभाजन तीव्र भर्त्सना करते हुए कहा था इस प्रशासन की तुलना हम अपने ही देश के इतिहास में औरंगजेब से कर सकते हैं।[1]

भारत की आजादी के लिए 1857 से 1947 के बीच जितने भी प्रयत्न हुए उनमें स्वतंत्रता का सपना संजोए क्रांतिकारी एवं शहीदों की उपस्थिति सबसे अधिक सिद्ध हुई। वस्तुतः भारतीय क्रांतिकारी आंदोलन भारतीय इतिहास का स्वर्ण युग है।

मातृभूमि की सेवा और उसपर मर मिटने के लिए जो भावना उस समय थी आज उन का नितांत अभाव है। आतंकवाद या क्रांतिकारी राष्ट्रवाद की प्रवृत्ति को उग्रवादी प्रवृत्ति का विस्तार माना जा सकता है, जो विदेशी प्रशासन की अधिक दमनकारी व प्रतिक्रियावादी नीति के कारण अस्तित्व में आई। उदार वादियों के कार्यक्रम व पद्धतियों की प्रभावशीलता में अविश्वास, यूरोपीय देशों में चल रहे स्वाधीनता के क्रांतिकारी आंदोलनों का अध्ययन तथा रूसी विनाश वादियों व अन्य यूरोपीय भूमिगत वर्गों द्वारा अपनाई जा रही षड्यंत्रकारी आतंकवाद की पद्धति ने भारतीयों के एक वर्ग को इतना प्रभावित किया कि वे इसके तरीकों का अनुगमन करने लगे। कर्जन के शासन के दौरान राष्ट्रवादी आंदोलन के उग्र दमन ने नरमपंथीयों को भी स्वदेश वा बहिष्कार आंदोलन का समर्थन करने तथा उग्रवादी वर्ग को राजनीतिक आतंकवाद का मार्ग अपनाने को विवश कर दिया।[2]

क्रांतिकारी आंदोलन का समय सामान्यतः लोगों ने सन 1857 से 1946 तक माना है। श्रीकृष्ण सरल का मत है कि इसका समय सन 1757 अर्थात् प्लासी के युद्ध से सन 1961 अर्थात गोवा मुक्ति तक मानना चाहिए क्योंकि गोवा मुक्ति के साथ ही भारत वर्ष पूर्ण रूप से स्वाधीन हो सका है। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की विशेषता यह रही है कि क्रांतिकारियों के मुक्ति के प्रयास कभी शिथिल नहीं हुए । भारत की स्वतंत्रता के बाद आधुनिक नेताओं ने भारत के सशस्त्र विद्रोह को प्रायः दबाते हुए उसे इतिहास में कम महत्व दिया है।

स्वराज्य उपरांत यह सिद्ध करने की चेष्टा की गई कि हमें स्वतंत्रता केवल कांग्रेस के अहिंसात्मक आंदोलन के माध्यम से ही मिली है। इसने विकृत इतिहास में स्वतंत्रता के लिए अपना सर्वस्व समर्पित करने वाले असंख्य क्रांतिकारियों अमर शहीदों की पूर्ण रूप से उपेक्षा की है। क्रांतिकारियों का उद्देश्य अंग्रेजों का रक्त बहाना नहीं था वे तो अपने देश का सम्मान लौटाना चाहते थे।

उनके हृदय में एक और क्रांति की ज्वाला थी वहीं दूसरी और आध्यात्म का आकर्षण भी। हंसते हुए फांसी के फंदे पर झूलने वाले सरफरोशी की तमन्ना रखने वाले देशभक्त भावुक ही नहीं विचारवान भी थे।

वे शोषण रहित समाजवादी प्रजातंत्र चाहते थे। संभवतः देश को स्वतंत्रता यदि सशस्त्र क्रांति के द्वारा मिली होती तो भारत का विभाजन नहीं हुआ होता क्योंकि सत्ता उन हाथों में ना आई होती जिनके कारण देश में भीषण समस्याएं उत्पन्न हुई हैं। भारतीय जनता के लिए आरंभ से ही समय–समय पर भारत के विभिन्न भागों में अंग्रेजों के विरुद्ध सशस्त्र विप्लव होते रहे हैं। यह विद्रोह अंग्रेजी राज्य की स्थापना के साथ ही आरंभ हो गया था।

बम और पिस्तौल की राजनीति में विश्वास करने वाले क्रांतिकारी विचारधारा के लोग ''जान दो या जान लो'' की राजनीति में विश्वास रखते थे।

वह विदेशी सत्ता को उग्र तरीकों से पलटने में विश्वास रखते थे। राष्ट्रीय आंदोलन के इस क्रांतिकारी परिवर्तन की प्रथम अभिव्यक्ति 1905 के स्वदेशी बहिष्कार आंदोलन में हुई। क्रांतिकारी आंदोलनों में 1857 का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम का महत्वपूर्ण योगदान है।

1857 का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम

लॉर्ड कैनिंग के गवर्नर जनरल के रूप में शासन करने के दौरान यह महान क्रांति हुई। इसका आरंभ 10 मई अट्ठारह सौ सत्तावन को मेरठ में हुआ। धीरे–धीरे यह कानपुर, दिल्ली, झांसी, बरेली आदि स्थानों में फैल गई। यह क्रांति सैन्य विद्रोह के रूप में आरंभ हुई। बाद में धीरे–धीरे ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध में एक जन व्यापी आंदोलन में बदल गई। इस क्रांति के होने के राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक आदि कई कारण थे।

राजनीतिक कारणों में गोद निषेध प्रथा या राज्य हड़पने की नीति को माना जाता है। इस नीति

से सातारा, नागपुर, झांसी, बरार आदि राज्यों पर अधिकार कर लिया था। कुशासन के आधार पर हैदराबाद तथा अवध को अंग्रेजी राज्य के अधीन कर लिया जबकि इन राज्यों पर कुशासन फैलाने के जिम्मेदार अंग्रेज स्वयं थे। पंजाब और सिंध का विलय भी अंग्रेजी हुकूमत ने कूटनीति के द्वारा किया, जो कालांतर में विद्रोह का कारण बना।

नाना साहब को मिलने वाली पेंशन को डलहौजी ने नवीन नीति के कारण बंद कर दिया। मुगल साम्राज्य बहादुर शाह के साथ अपमानजनक व्यवहार करना शुरू कर दिया जिससे जनता क्रुद्ध हो गई थी। आर्थिक कारणों में मुक्त व्यापार तथा अंग्रेजी वस्त्रों के भारत में आ जाने के कारण यहॉ के लघु और कुटीर उद्योग धंधे नष्ट हो गए। लॉर्ड विलियम बैटिंग अपने शासनकाल में बहुत सी इनाम की भूमि को छीन लिया जिसके कारण अनेक भारतीय जमींदार दरिद्र एवं कंगाल हो गए और इस तरह जमींदारों में अंग्रेजी सत्ता के खिलाफ असंतोष

व्याप्त हो गया था। अंग्रेजों द्वारा स्थापित स्थाई रैयतवाड़ी व्यवस्था उनके लिए प्रतिकूल साबित हुई।

धार्मिक कारणों में ब्रिटिश सत्ता ईसाई धर्म के प्रचार में अपना पूर्ण सहयोग दिया। वह ईसाई धर्म स्वीकार करने वालों को सरकारी नौकरी उच्च पद एवं अनेक सुविधाएं प्रदान करते थे। 1850 में पास किए गए ''धार्मिक निर्योग्यता अधिनियम'' द्वारा हिंदू रीति रिवाज में परिवर्तन लाया गया। अर्थात धर्म परिवर्तन से पुत्र अपने पिता की संपत्ति से वंचित नहीं किया जा सकता था। अंग्रेजों की इस नीति ने हिंदू और मुसलमानों में कंपनी के प्रति शंका भर दी। सैनिकों में व्याप्त असंतोष ने भी अट्ठारह सौ सत्तावन की क्रांति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। जैसे 1857 ई0 में कैनिंग द्वारा पारित ''सामान्य सेवा भर्ती अधिनियम'' जिसके द्वारा सरकार बंगाल के सभी सैनिकों को जहां चाहे वही कार्य करवा सकती है। 1854 ''डाकघर अधिनियम'' से सैनिकों की निःशुल्क डाक सुविधा समाप्त कर दी थी। 29, मार्च 1857 में मंगल पांडे नाम के एक सैनिक ने बैरकपुर छावनी में

अपने अफसरों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। खुला विद्रोह 10 मई रविवार को शाम 5:00 से 6:00 के बीच शुरू हुआ। इन विद्रोहियों में अपने अधिकारियों पर गोलियां चलाई।

तत्कालीन कारण इस विद्रोह का यह भी था कि 1856 में सरकार 'न्यू एनफील्ड राइफल' का प्रयोग शुरू हुआ। इसमें कारतूस को ऊपरी भाग को मुंह से काटना पड़ता था। जनवरी 1857 में बंगाल सेना में यह अफवाह फैल गई कि कारतूस में गाय और सुअर की चर्बी लगी है इस घटना ने चिंगारी का कार्य किया और मंगल पांडे ने विद्रोह की शुरुआत कर दी।

महाराष्ट्र में क्रांतिकारी आंदोलन

यहाँ पर वासुदेव बलवंत फड़के प्रयासरत् थे। बचपन से ही ये बड़े तेजस्वी और बहादुर बालक थे। 1871 में उनकी मां की तबीयत खराब होने पर वे अपने अंग्रेज के पास अवकाश प्रार्थना पत्र के लिए गए परंतु उन्हें अवकाश नहीं मिला। इससे दुखी

होकर उन्होंने अंग्रेजी नौकरी छोड़ दी। 1879 में अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह की घोषणा कर दी। महाराष्ट्र की कोली, भील और अंगार जातियों को एकत्र कर उन्होंने रामोशी नाम का क्रांतिकारी संगठन खड़ा किया। अपने इस मुक्ति संग्राम के लिए धन एकत्र करने के लिए धनी अंग्रेज साहूकार को उन्होंने लूटा। 13 मई 1879 को रात 12:00 बजे बलवंत फड़के एक सरकारी भवन जहां बैठक चल रही थी। अपने साथियों सहित वहां आए और अंग्रेज अफसरों को मारा तथा भवन में आग लगा दी। उसके बाद अंग्रेज सरकार फड़के को जिंदा या मुर्दा

पकड़ने पर ₹ 50,000 का इनाम घोषित किया। वहीं दूसरे दिन मुंबई में बलवंत फड़के के तरफ से घोषणा कर दी गई कि जो अंग्रेज अफसर रिचर्ड का सिर काट कर लाएगा उसे ₹ 75,000 इनाम दिया जाएगा। फड़के तथा अंग्रेजी सेना में कई बार मुठभेड़ हुई पर उन्होंने अंग्रेजी सेना को पीछे हटने पर मजबूर कर दिया। दामोदर हरी चापेकर, बाल कृष्ण हरी चापेकर, तथा वासुदेव हरी

चापेकर सगे भाई थे। जिन्होंने भारत की स्वतंत्रता के लिए अपना बलिदान दिया। तीनों भाइयों को संयुक्त रूप से चापेकर बंधु कहा जाता है। दामोदर हरी चापेकर ने 22 जून 1897 को रैण्ड और उसके सहायक लेफ्टिनेंट एयर्स्ट को गोली मारकर हत्या कर दी। यह भारत की आजादी की लड़ाई में प्रथम क्रांतिकारी धमाका था। रैण्ड ने प्लेग समिति के प्रमुख के रूप में पुणे में भारतीयों पर बहुत अत्याचार किए थे। इसकी बाल गंगाधर तिलक एवं आगरकर जी ने भारी आलोचना की जिससे उन्हें जेल में डाल दिया गया यह तीनों भाई तिलक जी को गुरवत सम्मान देते थे।

महाराष्ट्र में तिलक के संरक्षण में व सावरकर बंधुओं के सहयोग से इस आंदोलन ने गति पकड़ी अपने पत्र केसरी में तिलक ने रूसी पद्धति की प्रशंसा की। रूसी विनाश वादियों की तरह कार्य करने के लिए नासिक में अभिनव भारती नामक क्रांतिकारी संगठन बनाया गया। 21 दिसंबर 1909 ई0 की रात नासिक के जिला मजिस्ट्रेट जैक्सन को

कर्वे गुट के लक्ष्मण कन्हारे ने गोली मार दी। कन्हारे गिरफ्तार कर लिए गए। जैकसन हत्याकांड में कन्हारे, कृष्ण जी गोपाल कर्वे विश्वनाथ देशपांडे को 19 अप्रैल 1911 ई0 में फांसी दे दी गई। डॉक्टर बी0डी0 सावरकर को लंदन से गिरफ्तार करके नासिक लाया गया और अन्यव्यक्तियों के साथ नासिक षड्यंत्र के चला जिसमें सावरकर को आजीवन कारावास में डाल दिया। नासिक षड्यंत्र के बाद महाराष्ट्र के क्रांतिकारियों की रीढ़ टूट गई।

बंगाल में क्रांतिकारी आंदोलन

महाराष्ट्र के बाद बंगाल में पहुंचा। 1905 ईस्वी के बंगाल विभाजन के बाद यहां नए सिरे से राजनीतिक चेतना जागृत हुई। वस्तुतः बंगाल क्रांतिकारी का केंद्र बिंदु रहा। बंगाल में क्रांतिकारी विचार फैलाने का श्रेय वरिंद्र कुमार घोष (अरविंद घोष के छोटे भाई) एवं भूपेंद्र नाथ को दिया जाता है 1906 ई0 में दोनों युवकों ने मिलकर ''युगांतर'' समाचार पत्र का प्रकाशन किया। इस

समाचार पत्रिका ने क्रांति के विचार में बहुत योगदान दिया और इसके द्वारा लोगों ने धार्मिक एवं राजनीतिक विचारों को जागृत किया। इन्होंने अनुषीलन समिति की स्थापना की जिसका नारा था–खून के बदले खून।

डी0 एच0 किंग्सफोर्ड बिहार के मुज़फ़्फ़रपुर जिले के न्यायधीश थे। उन पर 30 अप्रैल 1908 ईस्वी को मुजफ्फरपुर में खुदीराम बोस और प्रफुल्ल चाकी ने बम फेंका। किंग्स फोर्ड बच गया परंतु दुर्भाग्य से उस गाड़ी में राष्ट्रीय आंदोलन से हमदर्दी रखने वाले मिस्टर केनेडी की पत्नी एवं पुत्री मारी गई प्रफुल्ल चाकी ने आत्महत्या कर ली परंतु खुदीराम बोस को गिरफ्तार कर लिया गया तथा 1908 ईस्वी में 15 वर्ष की आयु में उन्हें फांसी दे दी गई। खुदीराम बोस सबसे कम उम्र में फांसी पाने वाले क्रांतिकारी थे।

अलीपुर षड्यंत्र केस 1908

18 मई 1908 को कोलकाता के अलीपुर अदालत में 34 व्यक्तियों को अवैध शस्त्र रखने के कारण गिरफ्तार किया गया। यही मुकदमा अलीपुर षड्यंत्र केस के नाम से जाना जाता है। इस केस में सरकारी गवाह नरेंद्र गोसाई की अलीपुर जेल में सत्येंद्र नाथ बोस ने हत्या कर दी। इसके अतिरिक्त सरकारी वकील तथा पुलिस अधीक्षक की भी हत्या कर दी गई। वारीन्द्र गुट के लगभग सभी साथियों को काला पानी की सजा मिजली और अनुशीलन समिति गैर कानूनी घोषित की गयी।

जतिंद्रनाथ मुखर्जी को 1910 में डिप्टी पुलिस सुपरिटेंडेंट समसुल आलम की हत्या का अभियुक्त बनाया गया और उन पर हावड़ा षड्यंत्र केस चलाया गया परंतु इस मामले में वह किसी तरह फांसी से बच गए किन्तु 9 सितंबर 1915 ई0 को बालासोर उड़ीसा में पुलिस द्वारा घेरे लिए जाने पर जतिन ने मरते दम तक अत्यंत वीरता पूर्वक मुकाबला किया।

पंजाब में क्रांतिकारी आंदोलन

पंजाब में क्रांतिकारी आतंकवाद का उदय बार–बार पड़ने वाले अकालो और भू राजस्व तथा सिंचाई करो में वृद्धि के परिणाम स्वरूप हुआ। पंजाब में क्रांतिकारी आंदोलन के प्रणेता जतिन मोहन चटर्जी थे। 1904 ईसवी में सहारनपुर में भारत माता सोसायटी नामक गुप्त संस्था बनाई थी इनके साथ लाला हरदयाल, अजीत सिंह और सूफी अंबा आ मिले। क्रांतिकारी गुट का नेतृत्व मास्टर अमीर चंद्र के हाथों में आ गया। 23 दिसम्बर 1912 ई0 में वायसराय हार्डिग पर बम फेंका गया। बम फेंकने वाले में वसंत विश्वास और मन्मथ विश्वास बंगाल से भेजे गए थे। पंजाब के बहुत से क्रांतिकारी लाला हरदयाल तथा भाई परमानंद आदि संयुक्त राज्य अमेरिका में गदर पार्टी आंदोलन में शामिल हो गए। संयुक्त राज्य अमेरिका में गदर पार्टी की स्थापना के बाद पंजाब गदर पार्टी की गतिविधियों का केंद्र बना।

मद्रास में क्रांतिकारी आंदोलन

मद्रास प्रांत में क्रांतिकारी आंदोलन के अंतर्गत नीलकंठ और वंची अय्यर ने गुप्त रूप से भारत माता समिति की स्थापना की अय्यर ने 17 जून 1911 को तिन्नेवेल्ली के जिला जज आशे की गोली मारकर हत्या कर दी और बाद में आत्महत्या कर ली।

दिल्ली में क्रांतिकारी आंदोलन

कोलकाता से दिल्ली में राजधानी परिवर्तन के अवसर पर जब वायसराय लॉर्ड हार्डिंग समारोह पूर्वक दिल्ली में प्रवेश कर रहे थे। तब चांदनी चौक में 23 सितंबर 1912 ईस्वी को उनके जुलूस पर बम फेंका गया परंतु वह बच गया। लॉर्ड हार्डिंग की हत्या की षड़यंत्र की योजना रास बिहारी बोस ने बनाई थी। बम फेंकने वाले में वसंत विश्वास और मन्मथ विश्वास प्रमुख थे। लॉर्ड हार्डिंग की हत्या से संबंधित मुकदमा दिल्ली षड्यंत्र केस के नाम से जाना जाता है। इस षड्यंत्र का रहस्य खुल जाने

पर रासबिहारी बोस भागकर जापान चले गए जहां अपना क्रांतिकारी गतिविधियां जारी रखी वसंत विश्वास बालमुकुंद, अवध बिहारी तथा मास्टर अमीर चंद्र को फांसी हो गई। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान 1942 ईस्वी में बोस ने इंडियन इंडिपेंडेंस लीग का गठन किया तथा आजाद हिंद फौज के गठन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

विदेशों में क्रांतिकारी आंदोलन

भारत के राष्ट्र वादी क्रांतिकारियों ने विदेशों में काम करने अन्य देशों के क्रांतिकारियों से संपर्क स्थापित करने के उद्देश्य से भारत की स्वतंत्रता के बारे में वैध प्रचार करने तथा विदेशियों से सहायता प्राप्त करने के उद्देश्य से अपने आंदोलन का केंद्र विदेशों में विशेषकर ब्रिटेन, संयुक्त राज्य अमेरिका, अफगानिस्तान, फ्रांस, जर्मनी तथा पेरिस आदि स्थलों को बनाया।

लंदन में क्रांतिकारी गतिविधियां

भारत के बाहर सबसे पुरानी क्रांतिकारी समिति इंडिया होमरूल सोसाइटी की स्थापना कृष्ण वर्मा ने लंदन में की। उन्होंने भारतीय क्रांतिकारियों का एक समूह गठित किया जिसमें वी0 डी0 सावरकर, लाला हरदयाल और मदन लाल धींगरा प्रमुख थे। श्यामजी कृष्ण वर्मा ने लंदन में भारतीयों के लिए इंडिया हाउस नामक हॉस्टल की भी स्थापना की किन्तु जब श्याम जी लंदन छोड़कर पेरिस में बस गए तो इंडिया हाउस का राजनैतिक नेतृत्व वी0 डी0 सावरकर ने संभाला।

लंदन में 1 जुलाई 1909 को मदन लाल धींगरा ने इंडिया ऑफिस के सलाहकार कर्जन वायली की गोली मारकर हत्या कर दी। धींगरा को गिरफ्तार कर लिया गया तथा उनको फांसी दे दी गई इसके बाद वीर सावरकर को गिरफ्तार कर लिया गया और नासिक षड्यंत्र कांड तथा अन्य अभियुक्तों के मामले में मुकदमा चलाने उन्हें भारत भेजा गया।

अमेरिका में क्रांतिकारी आंदोलन

19वीं शताब्दी के अंतिम दशक में बहुत से भारतीय संयुक्त राज्य अमेरिका तथा कनाडा में जाकर बस गए थे। उनमें द्वारिका नाथ दास प्रमुख थे। 1906 के आसपास इन भारतीयों ने संयुक्त राज्य अमेरिका में राष्ट्रवादी गतिविधियां शुरू की। 1907 में भारतीय स्वतंत्रता लीग तथा 1908 में स्वतंत्र हिंदुस्तान नामक समाचार पत्रों द्वारा अमेरिका में रहने वाले भारतीयों में क्रांतिकारी का प्रसार करना था। 1857 ई0 में यहॉ लाला हर दयाल ने गदर नामक एक साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन किया, इसी कारण इस संगठन का नाम गदर पार्टी पड़ गया।

जर्मनी में क्रांतिकारी गतिविधियां

जर्मनी में भारतीय स्वतंत्रता की मशाल जलाने का श्रेय मैडम भीकाजी कामा एवं लाला हरदयाल को जाता है। मैडम रुस्तम के आर कामा ने 1902 इसवी में भारत छोड़ दिया तथा यूरोप के विभिन्न देशों एवं अमेरिका में ब्रिटिश शासन के

विरुद्ध क्रांतिकारी प्रचार करने में लगी रहीं। उन्होंने भारतीय प्रतिनिधि के रूप में अगस्त 1907 ईस्वी में जर्मनी में अंतर राष्ट्रीय समाजवादी कांग्रेस में भाग लिया। मैडम कामा ने भारत में ब्रिटिश शासन के घातक दुष्परिणामों का खुलासा करते हुए एक उत्तेजना पूर्ण भाषण दिया तथा सम्मेलन के अंत में वहीं पर भारत का राष्ट्रीय तिरंगा हरा पीला व लाल ध्वज फहराया। इनको मदर आफ इंडियन रिवॉल्यूशन कहा जाता है। लाला हरदयाल गदर आंदोलन पर प्रतिबंध लगाने के बाद अमेरिका से जर्मनी चले आए और यहां भारतीय स्वतंत्रता समिति की स्थापना की।

अफगानिस्तान में क्रांतिकारी आंदोलन

राजा महेंद्र प्रताप ने अपने सहयोगी बरकतुल्ला के साथ 1915 ईस्वी में काबुल में भारत की प्रथम स्थाई सरकार का गठन किया इसमें राजा महेंद्र प्रताप स्वयं राष्ट्रपति और बरकतुल्ला प्रधानमंत्री बने।

क्रांतिकारियों का प्रथम चरण असफल रहा क्योंकि अग्रेजों ने बड़ी तत्परता से इनका दमन किया।

क्रांतिकारी आंदोलन का दूसरा चरण

अक्टूबर 1924 ईस्वी में सभी क्रांतिकारी दलों द्वारा कानपुर में एक सम्मेलन आयोजित किया गया। इस सम्मेलन में शचीन्द्र नाथ, सान्याल, योगेश चटर्जी तथा राम प्रसाद बिस्मिल जैसे पुराने नेता और भगतसिंह, शिववर्मा, सुखदेव, भगवतीचरण, वोहरा तथा चंद्रशेखर आजाद जैसे युवा क्रांतिकारियों ने भाग लिया और 1924 में हिंदुस्तान रिपब्लिक एसोसिएशन का गठन कानपुर में किया गया।

हिंदुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन के क्रांतिकारियों ने सहारनपुर लखनऊ लाइन पर काकोरी जाने वाली 8 डाउन ट्रेन से सरकारी खजाना सफलतापूर्वक लूटा। इस संबंध में 29 क्रांतिकारियों को गिरफ्तार करके उन पर काकोरी

षड्यंत्र कांड का मुकदमा चलाया गया। 17 लोगों को लंबी सजाएं 4 को आजीवन कारावास तथा 4 क्रांतिकारियों राम प्रसाद बिस्मिल अशफाक उल्ला खां रोशन लाल तथा राजेंद्र लाहरी को क्रम से गोर खपुर फैजाबाद नैनी तथा गोंडा में फांसी दे दी गई।

कुछ समय बाद 1928 में चन्द्र शेखर आजाद और उनके साथियों ने षहिंदुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशनष की स्थापना हुई। इसका पहला कार्य सांडर्स की हत्या करना था। सांडर्स की हत्या के बाद क्रांतिकारी भूमिगत हो गए थे लेकिन पुलिस निर्दोष जनता को आतंकित कर रही थी। निर्दोष जनता की सहायता करने में असमर्थ तथा सरकार का रुख अपनी ओर केंद्रित करने के विचार से एच.एस.आर.ए. ने अपने दो सदस्यों को अपराध करने तथा गिरफ्तारी देने के लिए भेजने का निर्णय किया। तदनुसार भगत सिंह और बटुकेश्वर दत्त ने 8 अप्रैल 1929 ईस्वी को केंद्रीय विधानसभा में उस समय दो बम तथा कुछ पर्चे फेंके जब सभा में सार्वजनिक सुरक्षा विधेयक तथा व्यापार विवाद

विधेयक पर बहस चल रही थी । पर्चे में लिखा था कि बहरों को सुनाने के लिए बमों की आवश्यकता है। भगत सिंह और बटुकेश्वर दत्त को गिरफ्तार कर लिया गया तथा केंद्रीय असेंबली बम कांड में उन पर मुकदमा चलाया गया। जेल में रहते इन्होंने साधारण अपराधियों के बजाय राजनैतिक बंदियों का दर्जा प्राप्त करने के लिए भूख हड़ताल की। इन्होंने भारतीय कैदियों के साथ खराब व्यवहार और खराब भोजन के विरूद्ध आवाज उठायी, इनमें जतिंनदास प्रमुख हैं जिनका 13 अक्टूबर 1929 ईस्वी को अनशन के 64वें दिन देहांत हो गया। कुछ समय बाद भगत सिंह, सुखदेव तथा राजगुरु को 23 मार्च 1931 ई0 को फांसी दे दी गई।

भगत सिंह के बाद चंद्रशेखर आजाद ने पंजाब के क्रांतिकारी दल के संगठन की जिम्मेदारी यशपाल और भगवती चरण वोहरा को सौंप दी। बोहरा की पत्नी श्रीमती दुर्गा देवी ने भी क्रांतिकारी आंदोलन में भाग लेना शुरू कर दिया था। चंद्रशेखर आजाद तथा यशपाल ने 23 दिसंबर 1929 ईस्वी को वायसराय

लार्ड इरविन की ट्रेन को उड़ाने के लिए एक योजना बनाई। गाड़ी के तीन डिब्बे लूट लिए गए परंतु वायसराय बाल–बाल बच गए 23 दिसंबर 1930 ईस्वी को पंजाब के गवर्नर को मारने की कोशिश की गई। जब वे पंजाब यूनिवर्सिटी में भाषण देने के लिए आए । हरकिशन ने गवर्नर पर गोली चला दी। गवर्नर घायल हो गए हैं परंतु मरे नहीं 19 जून 1931 ईस्वी को हरकिशन को फांसी की सजा दी गई। 27 फरवरी, 1931 को इलाहाबाद के अलफ्रेड पार्क में चन्द्रशेखर और अंग्रेजों के बीच हुई झड़प में चन्द्रशेखर वीरगति को प्राप्त हुये।

दूसरी तरफ सूर्यसेन ने क्रांतिकारियों के अपने गुट के साथ मिलकर एक सैनिक संगठन बनाया। पूर्वी बंगाल के चटगांव नामक बंदरगाह पर सूर्य सेन के नेतृत्व में वहां के युवक और युवतियों ने विद्रोह करने का प्रयत्न किया। सूर्य सेन ने भारतीय गणतंत्र सेना की ओर से एक घोषणा जारी किया जिसमें चट गांव मेंमन सिंह, बारीसाल के शस्त्रागारों पर एक ही समय हमला करने की योजना थी।

क्रांतिकारियों ने पुलिस शस्त्रागार सहायक टुकड़ी पर कब्जा करने, टेलीफोन एक्सचेंज और तार घरों को नष्ट करने के लिए चार जत्थे भेजे थे। 65 युवक–युवतियों ने ब्रिटेन की भारतीय सेना की वर्दी पहनकर पुलिस शस्त्रागारों पर 18 अप्रैल 1930 ई0 में हमला किया। यह चटगांव आर्मरी रेड के नाम से मशहूर हुआ। 16 फरवरी 1933 को सूर्यसेन गिरफ्तार कर लिये गये। मुक़दमा चलने के बाद 12 जनवरी 1934 को उन्हें फाँसी पर लटका दिया गया।

भले ही आतंकवाद अपने इच्छित लक्ष्यों की पूर्ति में असफल रहा। फिर भी उनके सकारात्मक योगदान को इस तथ्य में देखा जाना चाहिए कि उन्होंने विदेशी शासकों के ह्दय में परिवर्तन पैदा किया। यहां तक कि 1910 में तत्कालीन भारत मंत्री मांटेग्यू को यह स्वीकार करना पड़ा कि भारतीय दंड संहिता के आधीन अभियोजन की नीति पिछले 3 वर्षों में खूब आजमा ली गई है इसके परिणाम स्वरूप भूमिगत एवं महत्वहीन युवकों

को शहादत मिली, राजद्रोह को प्रचार मिला तथा आक्रामक समाचार पत्रों की प्रसार संख्या में वृद्धि हुई है।[6]

सन्दर्भ

1 Annie Besant : How India for freedom P. 147

2 A.R. Desai : Social Background of Indian Nationalism, p. 339

3 Nehru, op. cit., p. 24

4 Gopal Thakur : Bhagat Singh p. 41

5 Montagu : Indian Affairs, p. 276

6 Ibid., pp. 36-35

7 Uniqe : Indian History

8 Dr. J.C. Jauhari : Indian National Movement and Constitution of India

9 S.K. Pandey : Modern India

ISBN: 978-81-951568-9-4

काकोरी ट्रेन एक्शन

प्रगति सिंह

प्रधानाचार्या

हेलो किड्स संस्कार स्कूल,

आवास विकास, मैनपुरी

यूं तो भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में बहुत सी लड़ाईयां लड़ी गयीं, बहुत से विद्रोह हुए, बहुत से आंदोलन छेड़े गए, किन्तु कुछ घटनाएं ऐसी हुई जिन्होंने जनमानस को काफी प्रभावित किया और इतिहास की प्रमुख घटनाएं बन गई। उन्हीं में से एक प्रमुख घटना थी काकोरी कांड। क्रांतिकारी आंदोलन के इतिहास में काकोरी ट्रेन डकैती की घटना एक

महत्वपूर्ण स्थान रखती है। उत्तर प्रदेश सरकार ने काकोरी कांड को काकोरी ट्रेन एक्शन' नाम दिया है, क्योंकि 'कांड शब्द स्वतंत्रता संग्राम के तहत अपमान की भावना दर्शाता है।

काकोरी ट्रेन एक्शन की पृष्ठभूमि तब तैयार हुई जब अक्टूबर 1924 में युवा क्रांतिकारियों राम प्रसाद बिस्मिल, शचीन्द्रनाथ सान्याल, चंद्रशेखर आजाद आदि ने कानपुर में एक सम्मेलन बुलाया तथा 'हिंदुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन' की स्थापना की। इस दल का उद्देश्य सशस्त्र क्रांति के द्वारा अंग्रेजी शासन को उखाड़ फेंकना तथा संघीय गणराज्य की स्थापना करना था। अपने उद्देश्यों को पूरा करने के लिए इन्हें धन की आवश्यकता थी। अतः राम प्रसाद बिस्मिल ने सहारनपुर से लखनऊ जाने वाली '8 डाउन' पैसेंजर ट्रेन का सरकारी खजाना लूटने की योजना बनाई।

9 अगस्त को हरदोई शहर के रेलवे स्टेशन से विस्मिल के अतिरिक्त अशफआक उल्ला खां,

मुरारी शर्म, बनवारी लाल, बंगाल से राजेन्द्र लाहिडी शचीन्द्रनाथ, चन्द्रशेखर आजाद, मन्मथनाथ गुप्त, मुकुन्दी लाल पैसेन्जर रेलगाड़ी में सवार हुए। क्रान्तिकारियों ने पिस्तौलों के अतिरिक्त जर्मनी के बने 4 माउजरों का प्रयोग भी किया जिसके बट में कुंडा लगा लेने से वह छोटी स्वचालित रायफल की तरह लगता था। लखनऊ से पहले जैसे ही गाडी काकोरी रेलवे स्टेशन पर रूक कर आगे बढ़ी क्रान्तिकारियों ने चेन खींचकर उसे रोक लिया और रक्षक के डिब्बे से सरकारी खजाने का बक्सा नीचे गिरा दिया। पहले उसे खोलने का प्रयास किया गया जब वह नहीं खुला तो अशफाक उल्ला खाँ ने अपना माउजर मन्मथनाथ गुप्त को पकड़ा दिया और हथौड़ा लेकर बक्सा तोड़ने में जुड़ गए। मन्मथनाथ से माउजर का ट्रैगर दब गया जिससे गोली छूटी और अहमद अली नामक एक यात्री को लग गयी और वह वहीं पर मर गया। थोड़ी देर में ताला तोड़ा गया और क्रांतिकारियों ने बक्से में से 4500 रुपये

चादर में लपेटे और भाग गए, किन्तु वहां से भागने में एक चादर वहीं छूट गई।

अगले दिन समाचार पत्रों के माध्यम से यह खबर सब जगह फैल गई। सी०आई०डी० इंस्पेक्टर तसद्दुक हुसैन के नेतृत्व में पुलिस ने पूरी छानबीन करके अंग्रेज सरकार को इस बात की जानकारी दी कि काकोरी ट्रेन डकैती क्रान्तकारियों का एक सुनियोजित षड़यंत्र है। पुलिस ने ककोरी केस के सम्बंधमें सूचना देने और षडयंत्र में शामिल किसी भी व्यक्ति को पकड़वाने के लिए पुरस्कार की घोषणा की और यह विज्ञापन सभी स्थलों पर लगवा दिया।

पुलिस को घटनास्थल पर मिली चादर पर लगे धोबी के निशान से इस बात का पता चल गया की चादर शाहजहाँपुर के किसी व्यक्ति की है। शाहजहाँपुर के धोबियों से पूछने पर मालूम हुआ कि चादर बनारसी लाल की है। बनारसी लाल को पकड़कर पुलिस ने इस डकैती का सारा भेद प्राप्त कर लिया। अब पुलिस ने बड़ी मुस्तैदी के साथ 40

लोगों को भारत के भिन्न–भिन्न स्थानों से गिरफ्तार किया। 10 लोगों पर 'काकोरी षड्यंत्र केस' के नाम से धारा 121 ए, 120 बी और 396 के तहत मुकदमा दायर किया गया।

दिसंबर 1925 से अगस्त 1927 तक लखनऊ के रोशनउद्दौला कचहरी और बाद में रिंक थिएटर में यह मुकदमा दो चरणों में चला। जगतनारायण मुल्ला को सरकार की ओर से वकील नियुक्त किया गया जब कि सजायाफ्ता क्रान्तिकारियों की ओर से के. सी. दत्त, जयकरण नाथ मिश्रा व कृपाशंकर हजेला ने क्रमशः राजेन्द्र नाथ लाहिढी, ठाकुर रोशन सिंह अशफाक उल्ला खां की पैरवी की। राम प्रसाद बिस्मिल ने अपनी पैरवी खुद की। बिस्मिल ने चीफ कोर्ट के सामने फैसले के खिलाफ अंग्रेजी में बहस की। इस पर चीफ जस्टिस लुइस शटस् ने बिस्मिल से अंग्रेजी में पूछा कि उन्होंने अपनी कानून की डिग्री कौन से विश्विद्यालय से प्राप्त की है। इस पर बिस्मिल ने कहा कि "क्षमा करें महोदय सम्राट बनाने वाले को किसी डिग्री की आवश्यकता नहीं होती।

बिस्मिल द्वारा की गयी सफाई की बहस से सरकारी तबके में सनसनी फैल गयी। मुल्ला जी ने सरकारी वकील की हैसियत से पैरवी करने में अनाकानी की। अतएव अदालत ने बिस्मिल की स्वयं वकालत करने की अर्जी खारिज कर दी। अन्तोगत्वा उन्हीं लक्ष्मीशंकर मिश्र को बहस करने की इजाजत दी गई जिन्हें लेने से बिस्मिल ने मना कर दिया था।

लखनऊ जेल में काकोरी षड़यन्त्र के सभी अभियुक्तों को रखा गया था। पहली पेशी दिसंबर 1925 में हुई। केस चलने के दौरान बसन्त पंचमी का त्यौहार आ गया। सब क्रान्तिकारियों ने तय किया कि सर पर पीली टोपी और हाथ में पीला रूमाल लेकर कोर्ट चलेगें। उन सब ने मिलकर रामप्रसाद बिस्मिल से कुछ देशभक्ति का गीत लिखने का आग्रह किया, जिसे गाते हुए कोर्ट जाएंगे। रामप्रसाद बिस्मिल ने उसी समय लिखा था–

मेरा रंग दे बसन्ती चोला,

हो मेरा रंग दे बसन्ती चोला

इसी रंग में रंग के शिवा ने मां का बन्धन खोला

यही रंग हल्दीघाटी में था प्रताप ने घोला

नव बसन्त में भारत के हित वीरों का टोला

इस मस्ती में पहन के निकला यह बसन्ती चोला।

मेरा रंग दे बसन्ती चोला।

22 अगस्त 1927 को हैंगिंग जज के नाम से प्रसिद्ध मि० हैमिल्टन ने अदालत में फैसला सुनाया जिसके अनुसार राम प्रसाद बिस्मिल, राजेन्द्र लाहिड़ी, अशफाक उल्ला और रोशन सिंह को फांसी की सजा दी। सान्याल, योगेशचन्द्र चटर्जी, फांसी की सजा पूर्व रामप्रसाद बिस्मिल क्रान्तिकारी अदालत जाते वक्त और आते वक्त कोरस में बिस्मिल अजीमाबादी की गजल गाते थे–

"सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है

देखना है जोर कितना बाजु–ए–कातिल में है"।

अदालत के फैसले के खिलाफ शचीन्द्रनाथ सान्याल भूपेन्द्रनाथ के अलावा सभी ने लखनऊ चीफ कोर्ट में अपील दायर की, लेकिन कोई फायदा नहीं हुआ। 17 दिसंबर 1927 पहले को सबसे पहले गोंडा जेलमें राजेंद्रनाथ लाहिड़ी को फांसी दी गई। फांसी से कुछ दिन पूर्व उन्होंने अपने एक मित्र को पत्र में लिखा था, 'मालूम होता है कि देश की बलिवेदी को हमारे रक्त की आवश्यता है। मृत्यु क्या है? दूसरी दिशा के अतिरिक्त कुछ भी नहीं। यदि सच है कि इतिहास पलटा खाया करता है तो मैं समझता हूँ हमारी मृत्यु व्यर्थ नहीं जाएगी, सबको अंतिम नमस्ते"।

19 दिसंबर,1927 को प. राम प्रसाद बिस्मिल को गोरखपुर जेल में फाँसी की सजा हुई। वे फाँसी पर झूलने तक जोर जोर से 'भारत माता'

'वंदेमातरम्' का जयकार करते रहे। ठाकुर रोशन सिंह को इलाहाबाद में फाँसी दी गई। अशफाक उल्ला खां को फैजाबाद में फाँसी की सजा दी गयी। उनका अंतिम गीत था–

तंग आकर हम भी उनके जुल्म से बेदाद से

चल दिए सुए अदम जिंदाने फैजाबाद से

इस प्रकार आजादी के मतवालों ने हँसते–हँसते मौत को गले लगा लिया। ये इतिहास के वो शहीद हैं जिन्होंने क्रांतिकारी आंदोलन के द्वितीय चरण में भारतीयों में फिर से जोश का संचार किया। आजादी के अमृत महोत्सव के इन वीरों को मैं शत शत नमन करती हूं।

सन्दर्भ

1 सुमित सरकार, आधुनिक भारत, राजकमल प्रकाशन, प्रा. लि., नई दिल्ली 1993

2 शिवनारायण सिंह राना, भारत भूमि का इतिहास हिन्दी प्रचारक पब्लिकेशन प्रा. लिमिटेड, वाराणसी 1997.

3 उदय खत्री, काकोरी केस शहीद, हमारा लखनऊ पुस्तकमाला –15

4 रामदुलारे त्रिवेदी, काकोरी दिलजले प्रकाशन–लोकहित प्रकाशन, लखनऊ

5 रश्मि कुमारी, काकोरी के पहले काकोरी के बाद, 1857–1947, प्रकाशन पेपर बैंक, 2017

6 रामप्रसाद बिस्मिल, रामप्रसाद बिस्मिल आत्मकथा, प्रकाशन प्रभात प्रकाशन 2020

7 बी. एल. ग्रोवर, यशपाल, आधुनिक भारत का इतिहास प्रकाशन–एस चन्द्र एण्ड कम्पनी लिमिटेड, रामनगर, नई दिल्ली

8 डा. योगेश प्रवीन, आप का लखनऊ प्रकाशन लखनऊ महोत्सव पत्रिका समिति

9 https://www.jagran.com

10 https://www.drishtiias.com

11 https://iasipshindi.com

12 https://satyagrah.scroll.in

ISBN: 978-81-951568-9-4

सत्याग्रही जतीन्द्र नाथ दास

डॉ0 श्रीमती अर्चना

(एसो0 प्रो0 संस्कृत)

डॉ0 अम्बेडकर रा0 स्नात0 महा0

ऊँचाहार, रायबेली

मादरे हिन्दोस्तां नाजीच तोहफा कर कबूल।
खून से लथड़ा हुआ पना ही सर लाया हूँ मैं।।

भारतीय इतिहास के उस क्रान्ति युग में जब देश की जनता ब्रिटिश साम्राज्यवाद के शिकंजे से मुक्त होने के लिए छटपटा रही थी तब बाबा साहब अम्बेडकर देश की आजादी के लिए चिन्तित

रहा करते थे। वे कहते थे कि देश में बार–बार आजादी क्यों खोनी पड़ी? कारण यह था कि हमारा सारा देश हमले के खिलाफ खड़ा नही हो सका। यूरोप में जब कभी युद्ध में जो सैनिक मरते थे उनकी जगह नये सैनिक आ जाते थे, वहाॅ पूरा देश लड़ता था, समाज का महज एक हिस्सा नहीं। भारत में जब क्षत्रिय हार जाते थे तो नये सैनिक नहीं आते। सार्वजनिक सैनिक भर्ती नही होती थी क्योंकि चतुर्वर्ण की घृणित व्यवस्था थी, कि युद्ध में केवल क्षत्रिय ही लड़ेगे। इसी कारण देश बार–बार गुलाम हुआ। अगर शूद्रों को शास्त्रधरण अधिकार से वंचित न किया गया होता यह देश कभी अपनी स्वतंत्रता न खोता और न कोई हमलावर भारत पर विजय हासिल करने में सफल होता।[1]

ये सच है कि मृत्यु जीवन का कटु सत्य है। इसकी कल्पन मात्र से ही रूह काँप जाती है, किन्तु लोग ऐसे है, जो मृत्यु की परवाह न करते हुए उससे टकराते हैं। वे हर पल जान हथेली पर लेकर मौत को चुनौती देते रहते है। ऐसे महान वीरों में

अमर शहीद यतीन्द्रनाथ दास का नाम अग्रणी है। यतीन्द्रे नाथ दास की शहादत हमें आज भी शोषण, अन्याय और अत्याचार से निरन्तर लड़ने की प्रेरण देती है।

यतीन्द्रनाथ दास का जन्म कलकत्ता में 27 अक्टूबर 1904 को हुआ था। इनके पिता जी का नाम श्री बांके बिहारी दास और माँ सुहासिनी देवी था। इन्हें इनके मित्रगण प्यार से जतिन दा कहते थे। 16 वर्ष की आयु में इन्होंने मैट्रिक की परीक्षा पास की है।

1920 में महात्मा गांधी ने ब्रिटिश सरकार के खिलाफ असहयोग आन्दोलन की शुरूआत की। गांधी जी के नेतृत्व में देश के हजारों लोग इस आन्दोलन में कूद पड़े। छात्रों ने अंग्रेजी स्कूलों को छोड़ दिया, वकीलों ने वकालत छोड़ दी, जगह–जगह विदेशी वस्त्रों की होली जलाई गयी। जतीन्द्र नाथ भी असहयोग आन्दोलन में शमिल हो गये और उन्होंने सरकारी कॉलेज का बहिस्कार

किया साथ ही विदेशी कपड़ों की होली जलाई। इस सम्बन्ध में इन्हें गिरफ्तार किया गया तथा 06 महीनें की सजा हई। जेल से छूटने के बाद ये दुबारा कॉलेज जाने लगे। कुछ समय बाद ये प्रसिद्ध कांत्रिकारी शचीन्द्रनाथ सान्याल के सम्पर्क में आये और षहिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिशन के सदस्य बन गये। 1925 में जतिन दा को दक्षिणेश्वर बम काण्ड और काकोरी काण्ड के सिलसिले में पकड़ लिया गया, किन्तु पहचान न होने के कारण इन पर मुकदमा नही चला इसलिए उन्हें बंगाल आर्डिनेन्स के तहत बंगाल में ही नजरबंद कर दिया गया।[2] यहॉ इन्होंने जेल में भारतीय कैदियों के साथ हो रहे दुर्वव्यहार के कारण 21 दिन की भूख हड़ताल की थी।

1928 में भगत सिंह कलकत्ता के कांग्रेस के अधिवेश में गये उसी समय यतीन्द्रनाथ नजरबंद से रिहा होकर वे भी अधिवेशन में पहॅुचे। भगत सिंह ने उन्हें कुछ बम बनाना सीखने और कुछ बम बनाने को कहा। इसी कारण आगरे में बम का कारखाना

बनाया गया। आगरे में यतीन्द्रनाथ ने जिन लोगों से बम बनाने की शिक्षा ली उनमें शिववर्मा, सदाशिवराम, मल्कापुरकर, भगतसिंह, सुखदेव, फणीन्द्रघोष मुख्य थे। इन बमों का परीक्षण झांसी से 20 किमी दूर जंगलों में किया गया। 8 अप्रैल 1927 को भगत सिंह तथा बटुकेश्वर दत्त ने जन विरोधी बिलों के खिलाफ बम फेंकने तथा इन्कलाब जिन्दाबाद का नारा लगाते हुए अपने को पुलिस के हाथों सौंप दिया। भगत सिंह और बटुकेश्वर दत्त ने अच्छे व्यवहार तथा राजनीतिक कैदियों का दर्जा दिये जाने की मांग को लेकर भूख हड़ताल शुरू कर दी। तब तक उनके अनेक साथ भी जेल पहुॅच गये थे। भगत सिंह और दत्त को एक महीने से अधिक हड़ताल का समय हो गया था परन्तु सरकार इस विषय में जरा भी सोचने को तैयार नही थी। अन्य साथी भी भूख हड़ताल में इन दोनों समर्थन करने की बात सोचने लगे।

यतीन्द्र पहले भी कई बार भूख हड़ताल का अनुभव कर चुके थे। इन्होंने अपने साथियों से कहा

कि वे जोश में आकर अनशन का ऐलान न करें। क्योंकि ऐलान करके हम एक लम्बे संघर्ष में उतर रहे है। गोली खाकर और फाँसी पर झूल जाना आसान है। मगर एक बार अनशन के मैदान में उतरकर पीछे हटना क्रांतिकारियों की प्रतिष्ठा से नीचे गिरना होगा।

उन्होंने अपने निर्णय के अनुसार 13 जुलाई 1929 को ऐतिहासिक अनशन शुरू कर दिया। साथ ही यह शर्त थी कि कोई बीमार होने पर किसी भी प्रकार की कोई दवा नही लेगा। यदि कोई जबरदस्ती करेगा तो पूरी शक्ति के साथ प्रतिरोध करेंगे।

अनशन शुरू हेने के पहले सभी क्रांतिकारी 10 दिन तक सामान्य रहे लेकिन धीरे–धीरे कमजोर होने लगे सरकार इस अनशन को समाप्त करने के लिये नीच हथकण्डे अपनाने लगी। जैसे उनके कोठरियों के सामने अच्छा खाना फल आदि रख देना तथा मटकों में पानी की जगह दूध भर देना।

परन्तु क्रांतिकारी उनकी इन हरकतों से जरा भी विचलित नहीं होते। जब इन बातों का क्रांतिकारियों पर कोई प्रभाव नही हुआ तो सरकार अैर भी घिनौने हथकंडे अपनने लगी। कभी तो कई डाक्टरों का दल पॉच दस हट्‌टे–कट्‌टे पहलवानों को लेकर आते और जबरदस्ती क्रांतिकारियों की नाक में नली डालकर पेट में दूध पहुँचने का प्रयास करते, क्रांतिकारी इस स्थिति का मुकाबला बड़ी बहादुरी से करते। परन्तु इस गुत्थमगुत्था में यतीन्द्रनाथ दास डाक्टर की पकड़ में नहीं आये। इससे डाक्टर परेशान हो जाते और तुम्हें ''कल देखूँगा'' की धमकी देकर जाते।

एक दिन डाक्टर अपने कई तगड़े जवानों के साथ आया और यतीन्द्रनाथ को धर दबोचा, यतीन्द्रनाथ ने बहुत संघर्ष किया, परन्तु वे अपने को छुड़ा नहीं पाये। जब दास को काबू में न कर पाये तो उनकी नाक में नली डाल दी, परन्तु यतीन्द्रनाथ दास ने खाँस कर नली मुँह में ले ली और दाँतों से चबा डाली, डाक्टर ने दूसरी नली

नाक में डालने क प्रयास किया तो दास का दम घुटने लगा। दूसरी नली पेट में जाने के बजाय फेफड़ो में चली गयी। जिससे फेफड़ो में दूध चला गया। दास छपटाते रहे। उन्हें इस हालत में छोड़कर डाक्टर वहाँ से चले गये।

थोड़ी देर बाद यतीन्द्र की हालत बिगड़ने लगी और मौत की तरफ बढने लगे। उनकी हालत को देखकर सरकार ने उन्हें जमानत पर रिहा करने का प्रस्ताव रखा किन्तु उन्होंने प्रस्ताव स्वीकार करने से मना कर दिया। उनका कहना था कि यदि हमें कुछ पाना है तो कुछ खोना भी पड़ेगा। यतीन्द्र ने साथियों से कहा–यह चाल है। सरकार जानती है कि मैं बचूंगा नहीं, वह मेरी मौत की जिम्मेदारी अपने कंधो पर नहीं लेना चाहती। वह मुझे जेल के फाटक पर फेंक कर मुझसे मुक्ति पाना चाहती है। मै ऐसा नही होने दूँगा।[3]

यतीन्द्रनाथ दास के अन्तिम क्षणों की चर्चा करते हुए उनके मित्र श्री शिववर्मा दर्द भरे शब्दो में

लिखते है कि ''महाप्रयाण की तैयारी से पहले उनके पैर का अंगूठा शून्य हो गया फिर धीरे–धीरे उनके पैर और तब हाथ निश्चेष्ट हुए फिर आंखो ने साथ छोड़ दिया''।

अनशन के 63 वे दिन यानि 13 सितम्बर 1929 को उनकी हालत देखकर डाक्टरों ने उन्हें इन्जेकशन लगाना चाहा था। उनका मानना था कि अचेतन अवस्था में दास को शायद पता भी नहीं चलेगा कि उन्हें इंजेक्शन लगाया जा रहा है, लेकिन जैसे ही डाक्टरों ने उनका हाथ पकड़कर उस पर स्प्रिट मली वैसे ही उन्होने रूधे गले और डरावनी आवाज मे कहा–नो। उनके साथ डाक्टरों का दल सहम गया। इस दुखद् घटना के बाद उन्होने सदा के लिए आंखे बन्द कर ली।

63 दिनों के निरन्तर उपवास के कारण यतीन्द्रनाथ शहीद हो गये। उनकी अन्तिम यात्रा में लाहौर में 50000 से अधिक लोग शामिल हुये। उनके शव को कलकत्ता ट्रेन से ले

जाया गया, कानपुर इलाहाबाद और विभिन्न स्टेशनों पर हजारों लोग उनकी श्रृद्धाजलि में पहुँचे कोलकाता में अन्तिम यात्रा का नेतृत्व सुभाष चन्द्र ने किया।[4]

जब भी कोई क्रान्तिकारी जिन्दाबाद का नारा लगाता है तो हमारा आशय यह होता है कि हम उनके जीवन के महान आदर्शों तथा उस उनके अथक उत्साह को सदा–सदा के लिए बनाये रखें जिससे उस महानतम बलिदानी को उनके आदर्शों, अकथनीय कष्टों से झेलने की असीम प्रेरणा मिली, जो युवा वर्ग के लिये प्रेरणा श्रोत है। उनका लक्ष्य शोषणविहीन समाजवादी समाज की स्थापना था जो कि शायद अभी भी पूर्ण नहीं हुआ।[5]

क्रान्ति की भावना मनुष्य जाति की आत्मा में स्थायी तौर पर ओत–प्रोत रहनी चाहिए जिससे की रूढ़िवादी शक्तियाँ मानव समाज में बाधक न बने, पुरानी व्यवस्था सदैव विद्यमान रहे, नई के लिए स्थान रिक्त रहे, और आदर्श व्यवस्था संसार को

बिगाड़ने में रोके रखे। इस अभिप्राय को हृदय में र खकर इंकलाब जिन्दाबाद का नारा बुलन्द करें।[6]

खिल के गुल कुछ तो बहारे जा
फिजॉ दिखला गये

हसरत उन गुंचों पै है,
जो बिना खिले मुर्झा गये।

संदर्भ

1 डॉ0 दिनेश कुमार सिसोदिया, डॉ0 भीमराव अम्बेडकर द्वारा 21 मार्च पूना में दिये गये भाषण के अंश ।

2 लीलाधर शर्मा पर्वतीय भारतीय चरित्र कोष, शिक्षा भारती, मदरसा रोड, कश्मीरी गेट, दिल्ली, पृ0–667।

3 https://jivanihindhi.com

4 डॉ0 रणजीत , आजादी के परवाने

5 वही से

6 नवजीन, फेसबुक के अंश

7 वी.के.दत्त, भगत सिंह

8 वहीं से

ISBN: 978-81-951568-9-4

नेता जी सुभाषचन्द्र बोस

खुशबू गुप्ता
रिर्सोस पर्सन,
सेन्टर ऑफ कम्प्यूटर एजुकेशन
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

नेताजी सुभाषचन्द्र बोस भारतीय इतिहास के उन व्यक्तियों में से एक हैं जो इतिहास के पन्नों में अमर हो गये। “तुम मुझे खून दो मैं तुम्हें आजादी दूँगा” यह वाक्य सुनते ही नेता जी सुभाषचन्द्र हमारे आँखों के सामने जीवित हो जाते हैं।

इनका जन्म 23 जनवरी 1887 को उड़ीसा के कटक नामक स्थान पर हुआ था। इनके पिता का

नाम जानकी दास और माता का नाम प्रभावती बोस था। इन्होंने 1919 में कलकत्ता विश्वविद्यालय से स्नातक की उपाधि प्राप्त की। भारतीय सिविल सेवा की परीक्षा में 'चौथा' स्थान प्राप्त किया। लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि देशभक्ति की तीव्र भावना के कारण इन्होंने नियुक्ति से पहले ही त्यागपत्र दे दिया।

''सुभाषचन्द्र बोस स्वतंत्रता सेनानियों के प्रमु ख थे, जो कि क्रांतिकारी थे तथा शनैः शनैः चलने वाले राजनीतिक आन्दोलनों में उनका कोई विश्वास नहीं था। वह गाँधी जी की अहिंसा की धारणा में विश्वास नहीं करते थे।''[1]

महात्मा गाँधी ने जब चौरा चौरी काण्ड के बाद असहयोग आंदोलन स्थगित कर दिया था, तब सुभाषचन्द्र बोस ने इसकी तीव्र आलोचना की "उन्होंने कहा कि ऐसे समय में जब जनता का उत्साह अपनी चरम सीमा पर था तब इस राष्ट्रीय

आंदोलन का स्थगन किसी राष्ट्रीय विपदा से कम नहीं था।”

सुभाषचन्द्र बोस चितरंजनदास से काफी प्रभावित थे। “1923 में उन्होंने स्वराजदल के गठन तथा कार्यक्रम का समर्थन किया। उनका विचार था कि अंग्रेजों का विरोध भारतीय विधान परिषदों के अन्दर भी होना चाहिए। 1924 में जब सी0 आर0 दास कलकत्ता के महापौर बने तो सुभाषचन्द्र बोस कलकत्ता निगम के मुख्य कार्यकारी अधिकारी नियुक्त किए गए। अक्टूबर 1924 में बंगाल सरकार ने उनकी राजनीतिक गतिविधियों के लिए उन्हें बन्दी बना लिया तथा उन्हें माण्डले (बर्मा में एक नगर) में तीन वर्ष के लिए निर्वासित कर दिया।”[2]

भारतीय कांग्रेस की उदारवादी विचारधारा इनको पसंद नहीं थी। इनका मानना था कि गुलाम भारत में इस तरह की उदारवादी विचारधारा से काम नहीं चल सकता है। 1928 में कांग्रेस के द्वारा प्रस्तुत किए गए नेहरू रिपोर्ट का इन्होंने विरोध किया।

क्योंकि इसमें औपनिवेशिक स्वराज्य की बात की गयी थी और बोस जी पूर्ण स्वतंत्रता चाहते थे।

महात्मा गाँधी और सुभाषचन्द्र बोस के मतभेद जग जाहिर हैं। "वे गाँधी की भाँति राजनीतिक और नैतिक प्रश्नों को संयुक्त नहीं करते थे, उन्हें गाँधी की तरह धर्म और राजनीति का बन्धन स्वीकार्य न था, पर व्यक्ति के रूप में गाँधी जी के लिए उनके मन में बड़ी इज्जत थी। हरिपुर कांग्रेस अधिवेशन में अपने अध्यक्षीय भाषण में उन्होने कहा था "भारत गाँधी को खोना नहीं चाहता और विशेषकर इस समय हमें उनकी आवश्यकता है ताकि हमारा संघर्ष घृणा और द्वेष से मुक्त रहे। हम आजादी के लिए उनकी आवश्यकता अनुभव करते हैं। इससे और अधिक क्या कहें हमें मानवता की रक्षा के लिए उनकी आवश्यकता है।"[3]

जनवरी 1938 में सुभाषचन्द्र बोस हरिपुरा अधिवेशन में कांग्रेस के अध्यक्ष चुने गए। "1939 में उन्होंने त्रिपुरी (म0प्र0) कांग्रेस अधिवेशन में पुनः

अध्यक्ष का चुनाव लड़ने का निश्चय किया, परन्तु गाँधी इसके पक्ष में नहीं थे। अतः उन्होंने पट्टाभि सीतारमैया को सुभाष के विरुद्ध खड़ा किया। गाँधी के विरोध के बावजूद सुभाष अध्यक्ष निर्वाचित हुए और सीतारमैया की हार गाँधी जी ने अपनी हार मानी। गाँधी जी के विरोध को देखते हुए सुभाष ने अध्यक्ष पद से इस्तीफा दे दिया[4]

मई 1939 में सुभाषचन्द्र बोस ने फरवर्ड ब्लॉक नामक एक राजनीतिक दल का गठन किया। इस राजनीतिक दल ने भारत के नवयुवकों को बहुत तेजी से आकर्षित किया। सुभाषचन्द्र बोस की शक्ति बहुत तेजी से बढ़ती जा रही थी। ब्रिटिश सरकार इनकी लोकप्रियता को देखकर काफी सशंकित रहती थी। उन्हें नजरबंद कर लिया। इस पर उन्होंने सरकार को चेतावनी भरा पत्र लिखा "मुझे मुक्त कर दीजिए अन्यथा मैं जीवित रहने से इन्कार कर दूँगा। इस बात का निश्चय करना मेरे वश में है कि मैं जीवित रहूँ या मर जाऊँ। शहीदों का खून धर्म का बीज होता है। मुझे आज अवश्य मर जाना चाहिए

जिससे भारत स्वतंत्र और प्रतापी हो। अपने देशवासियों को मुझे यही कहना है—भूलना मत कि दासता मनुष्य के लिए सबसे पहला पाप है।"[5]

1939 सितम्बर में द्वितीय विश्वयुद्ध शुरू हो गया था। ब्रिटिश सरकार सुभाषचन्द्र बोस से भयभीत होकर उन्हें अपने ही घर में नजरबंद कर दिया। पर सरकार के आँखों में धूल झोंककर वह भाग निकले। वह विदेश पहुँचकर विदेशी सहायता प्राप्त करने की कोशिश करने लगे। वह रेडियो से भारत समर्थक तथा अंग्रेज विरोधी भाषण प्रसारित किया करते थे। कहा जाता है कि 28 मई 1941 हिटलर को हिटलर नेता जी मिला था। पर यह मुलाकात सफल नहीं मानी जाती है। हिटलर ने नेताजी की पूरी बातों को नहीं माना था।

सुभाषचन्द्र बोस की लोकप्रियता दिन—प्रतिदिन बढ़ती जा रही थी। 5 जुलाई 1943 को सुभाषचन्द्र बोस भारतीय स्वतंत्रता लीग के अध्य क्ष चुन लिए गए। रासबिहारी बोस और सुभाषचन्द्र

बोस के बीच काफी घनिष्ठ सम्बन्ध था। 21 अक्टूबर 1943 को सुभाषचन्द्र बोस ने आजाद हिन्द फौज के सर्वोच्च सेनापति की हैसियत से सिंगापुर में भारत की अस्थायी सरकार स्थापित कर दी। इस समय इन्होंने 'दिल्ली चलो' और तुम मुझे खून दो मैं तुम्हें आजादी दूँगा का नारा दिया। वह स्वयं ही इस सरकार के प्रधानमंत्री तथा मुख्य सेनापति बन गए तथा अपने पद की शपथ ग्रहण की जो इस प्रकार है "मैं सुभाषचन्द्र बोस ईश्वर की पवित्र सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि मैं भारत तथा उसके अड़तीस करोड़ वासियों की स्वतंत्रता के लिए अपने अन्तिम श्वास तक युद्ध करता रहूँगा। संसार की 9 शक्तियों ने जिसमें जापान, जर्मनी, बर्मा फिलीपीन्स, कोरिया, इटली, चीन और आयरलैण्ड सम्मिलित थे, ने इस सरकार को मान्यता दी।

1943 में जापान सरकार ने नवविजित अंडमान तथा निकोबार द्वीपों को इस स्वतंत्र भारत की अस्थायी सरकार को सौंप दिया। "4 फरवरी 1944 ई. को सुभाष ने शहीदी दिवस मनाया। आजाद हिन्द फौज की सेना

असम में कोहिमा तक पहुँच गई। कोहिमा के स्थान पर तिरंगा झण्डा गाड़ दिया।"[6]

परन्तु नियति को कुछ और मंजूर था। द्वितीय विश्वयुद्ध के समय जापान की स्थिति काफी कमजोर हो गयी। जर्मनी ने भी हार मान ली। कहा जाता है कि सुभाषचन्द्र बोस सिंगापुर से जापान जाना चाहते थे और जाते समय रास्ते में ही 18 अगस्त 1945 को वायुयान दुर्घटना में वह मारे गये। यद्यपि इनकी मृत्यु काफी विवादास्पद रही है।

पहले "द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात भारत में जो तीव्र जन आन्दोलन फैला तथा जिसका प्रभाव भारतीय वायुसेना तथा जलसेना पर भी आया, उसके निर्माण में आजाद हिन्द फौज का बहुत बड़ा भाग रहा। इस दृष्टि से उसने भी भारत की स्वतंत्रता में अपना योगदान दिया।"[7] निःसन्देह सुभाषचन्द्र बोस भारत के महान विभूति थे। इसलिये जनता उन्हें प्यार से 'नेता जी' कहकर सम्बोधित करती थी। अपने देश को आजाद कराने के लिए उन्होंने अपना तन, मन,

और धन सबकुछ न्यौछावर कर दिया। इनके त्याग और बलिदान को सदैव याद रखा जायेगा।

संदर्भ

1 बी0 एल0 ग्रोवर, यशपालः– आधुनिक भारत का इतिहास एक नवीन मूल्यांकन एस चन्द्र एण्ड कम्पनी लिमिटेड 2001 पृ0 339

2 वही, पृ0 337, 338

3 डॉ0 अमरेश्वर अवस्थी, डॉ0 रामकुमार अवस्थीः–आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन रिसर्च पब्लिकेशन्स 2002 पृ0 533

4 डॉ0 एस0 के0 गुप्ताः– "आधुनिक भारत" शारदा पुस्तक भवन प्रयागराज 2016 पृ0 479

5 डॉ0 अमरेश्वर अवस्थी, डॉ0 रामकुमार अवस्थी 'आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन' पृ0 531

6 एस0 के0 पाण्डे "आधुनिक भारत" प्रयाग एकेडमी पब्लिकेशन एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स 2014 पृ0 38।

7 एल0पी0 शर्मा "आधुनिक भारत" लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा 2011–12, पृ0 594

ISBN: 978-81-951568-9-4

आजादी का अमृत महोत्सवः गांधी जी के विचारों के संदर्भ में

श्रीमती लेखा मिर्ज़ा
असिस्टेंट प्रोफेसर–राजनीति विज्ञान
डॉ0 अम्बेडकर राजकीय स्नातकोत्तर
महाविद्यालय, ऊँचाहार रायबरेली

विदेशी शासन के विरूद्ध भारत के परंपरागत संघर्ष की सबसे बड़ी परिणति 1857 के विद्रोह के रूप में हुई। यह जनता के उस संघर्ष की पराकाष्ठा थी, जो 1757 में ब्रिटिश

राज की शुरूआत के बाद से आरम्भ हो गयी थी। भारत में ब्रिटिश राज की स्थापना ने भारतीयों के मन–मस्तिष्क को असंतोष और क्षोभ से भर दिया जिसके परिणामस्वरूप विभिन्न आंदोलन हुये। ये आंदोलन लोगों के मन में अंग्रेजों के प्रति घृणा का परिणाम थे। प्रसिद्ध इतिहासकार विन्सेण्ट स्मिथ के अनुसार–'इस विद्रोह का आरम्भ सेना द्वारा हुआ, किन्तु यह सैनिको तक सीमित नहीं रहा और शीघ्र ही इसका प्रसार आम जनता तक हो गया। आम जनता ने विद्रोहियों का साथ दिया और सबका लक्ष्य देश को स्वाधीन करना हो गया।

असहयोग आंदोलन से भारत के राष्ट्रीय आंदोलन का एक नया दौर शुरू हुआ। इस दौर में राष्ट्रीय आंदोलन का नेतृत्व गाँधी जी ने किया। गाँधी जी के व्यक्तित्व का अंकन करते हुये प्रो0 ए0आर0 देसाई ने लिखा है–''गांधी भीमकाय पुरुष की तरह समूचे दृष्टि–पटल पर छा गये। राष्ट्रीय मुक्ति के संग्राम में जनसाधारण और जन आंदोलन की महत्वपूर्ण भूमिका को समझने वाले वे

पहले राष्ट्रीय नेता थे।'' गांधी जी दूरदर्शी व भविष्यदृष्टा थे। वे भारत की प्रकृति को समझते थे। उनके विशाल व्यक्तित्व का ही परिणाम था कि उनके आलोचक भी उनसे प्रभावित थे। उनके दिये गये समस्त विचार आज के समाज व राष्ट्र की आवश्यकता बन गये हैं। उनसे दूर रहकर, भारत का चर्तुमुखी विकास सम्भव नहीं है।

गॉधी जी ने जो अलख राष्ट्रीय आंदोलन के समय से लोगों के मन में जलायी वो आज भी ''आजादी के अमृत महोत्सव' के रूप में हमारे हृदय में प्रज्ज्वलित है। गांधी जी द्वारा चलाया गया असहसोग आंदोलन हमारे राष्ट्रीय आंदोलन का वो आधार है जिसने राष्ट्र की आजादी का मार्ग प्रशस्त किया। ब्रिटिश समाजवादी नेता एच0एन0 ब्रेल्सफोर्ड के अनुसार– ''गांधी जी के अद्‌भुत व्यक्तित्व ने भारत के इस संघर्ष को निर्णयात्मक बना दिया।''

गांधी जी का अनोखापन इस तथ्य में निहित है कि उन्होंने सामंजस्यता का एक ऐसा सिद्धान्त व

तरीका विकसित किया जो संघर्ष की संभावनाओं को कम करता है। उन्होंने राष्ट्रीय आंदोलन को इस प्रकार संचालित किया कि सभी प्रकार के हितों के दबाव व प्रतिदबाव आपस में गुँथ गए तथा राष्ट्रीय स्वाधनीता की प्राप्ति सभी का सामान्य लक्ष्य बन गया। गाँधी जी के नेतृत्व का मूल्यांकन जवाहर लाल नेहरु के शब्दों में–''गांधी जी का प्रभाव भारत की सभी दिशाओं में था और इसने अपनी छाप भी छोड़ी। वे अपने अहिंसा व आर्थिक सिद्धान्तों के कारण भारतीय नेताओं में सबसे प्रभावशाली व अग्रगण्य ही नहीं हुये वरन् भारत के उन बहुसंख्यक लोगों के प्रतीक बन गए थे जो स्वाधीनता के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ थे''।

गाँधी जी के अवतरण के बाद भारतीय राजनीति की दशा–दिशा पूरी तरह बदल गयी। आज उनके गये सात दशक से अधिक हो गये हैं पर बापू ऐसी रवायत बन गये हैं जो हर विवाद के साथ पुख्ता होते हैं और हर बदलते वक्त के साथ अधिक प्रसांगिक होते गये हैं। भारत ही नहीं दुनिया

के प्रतिनिधियों ने उनसे सबक हासिल किया है। विश्व के अधिकांश देशों ने गांधीजी की इस बात को स्वीकार किया कि आप जिससे नफरत करते हैं उसे क्षमा करने से बेहतर कुछ नहीं हो सकता। इस बदलती हुयी दुनिया के कई चेहरे उभरते हैं परन्तु कुछ समय बाद उनकी तस्वीर धुँधली हो जाती है परन्तु गांधी जी की मौत के बरसों बाद भी वे प्रभावशाली हैं। आज गांधी जी प्रतिरोध के 'इनोवेटर' नजर आते हैं। उन्होंने दमन, शोषण और उससे उपजी घृणा को क्षमा भरी सहनशीलता के जरिये परास्त किया था। गांधी जी के समय दो महायुद्ध हुये और उस समय उन्होंने स्वर्णिम सिद्धान्त को जीकर दिखाया। असंभव को संभव बना देना गांधी जी की फितरत का पहला हिस्सा था। गांधी जी उस हिन्दू परम्परा के पोषक थे, जिसके पास समभाव से सबको अपना लेने की क्षमता है। यहीं वजह है कि हर धर्म के लोग उनमें समान भाव से श्रद्धा रखते थे। नोआखाली का उदाहरण इसका साक्षात् प्रमाण है। वहाँ भड़की दंगों की आग जब

नहीं बुझ सकी तो गांधी जी सामने आये और आमरण अनशन शुरू किया। उनकी गिरती हालत दे खकर हिन्दू और मुस्लिम समाज के लोगों ने मिल–जुलकर उनसे क्षमा मांगी थी।

हिन्दुस्तान की आत्मा पर सदियों से पड़ी धूल को गांधी जी ने सार्थक फूँक मारी थी। इसके बाद किसी तंत्र–मंत्र की जरूरत नहीं पड़ी। विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र ने इसी मुकाम से आकार लेना शुरू कर दिया था। गांधी जी जानते थे कि सत्य और अहिंसा जैसा समझदारी का मार्ग छोड़ा तो वह पतन के पाताल में ही समाकर रूकेगी। यही वजह है कि उन्होंने चौरी–चौरा काण्ड के बाद आंदोलन वापसी की घोषणा की। बापू दमनकारियों का पतन नहीं करते थे अपितु अपनी सहनशीलता और तर्क–क्षमता से उनके रवैये को नरम करने में कामयाबी पाते थे। इसांनी फितरत को समझना आसान नहीं है। प्रेम, पारदर्शिता और स्वभाव के जरिये अपार श्रद्धा अर्जित करने वाले गांधी नफरत से अपना दामन नहीं छुड़ा

सके। जिस घृणा के खिलाफ वह लड़ते थे, उसी घृणा ने उनकी जान ले ली। मौत के इतने वर्षों बाद भी गांधी जी प्रासंगिक है क्योंकि वह एक विचार है और विचार मरा नहीं करते ना ही उन्हें मारा जा सकता है।

गांधी जी ने कभी भी 'चलता है' वाला रवैया नहीं अपनाया। असहयोग आंदोलन के करीब 25 साल बाद भारत आजाद हुआ। उस समय हमारा समाज जाति, धर्म, क्षेत्र जैसे टुकड़ों में बँटा हुआ था। हिन्दू–मुस्लिम दंगे चरम पर थे, पर ये उनकी दूरदर्शिता और रणनीति का ही नायाब उदाहरण है कि हमारा समाज अफ्रीकी देशों की तरह टुकड़ों में नहीं बँटा। अपने लक्ष्य और उसके प्राप्ति की राह को लेकर गांधी की स्पष्टता, नेतृत्व क्षमता, सत्य, अहिंसा और त्याग ने भारत की मजबूत नींव रखी।

गांधी जी कभी भी जिम्मेदारी लेने से नहीं डरे। उनके सामने लक्ष्य था देश की आजादी का।

ताकतवर प्रतिद्वंदी अंग्रेज सामने थे और लाखों हिन्दुस्तानियों की उम्मीदें गांधी जी पर टिकी थी। फरवरी 1922 में जब अहसयोग आंदोलन चरम पर था, अचानक उत्तर प्रदेश के चौरी चौरा में आंदोलनकारी हिंसक हो गये, उन्मादित भीड़ ने 22 पुलिसकर्मियों को जिंदा जला दिया। गांधी आहत हुये और असहयोग आंदोलन को वापस ले लिया। सभी इस फैसले से असंतुष्ट और रोष में थे पर गांधी बोले, देश अभी आजादी के लिये तैयार नहीं है। वे एक ऐसे भारत की कल्पना करते थे जहाँ हिंसा के लिये कोई जगह ना हो।

गांधी के भारत आने के दो साल बाद ही सन् '1917' में चंपारण के लोग सामाजिक संकट से जूझ रहे थे। गांधी जी ने उनका दुःख–दर्द, समस्या और चंपारण की यात्रा की। चंपारण में गांधी की गिरफ्तारी के बाद जो हुआ वह असाधारण था। लोग भड़क उठे और सुनवाई के दौरान अदालत कक्ष में घुस आये। अंग्रेजों को उन्हें छोड़ना पड़ा। गांधी ने असफलता या मृत्यु

के भय को परे रखकर सत्याग्रह और अहिंसा को अपनी बात जनता और अंग्रेजों के कानों तक पहुँचाने का जरिया बनाया। इससे अंग्रेजों को अहसास हुआ कि वे उन्हें प्रभावित नहीं कर सकते। ये गांधी जी का करिश्माई व्यक्तित्व ही था कि उन्होंने सरकार में कोई अधिकारिक पद नहीं सँभाला, उनके पास कोई धन नहीं था, कोई सेना नहीं थी लेकिन लाखों लोग उनके पीछे चलते थे।

गांधी जी प्रबन्धन के गुरु थे। उन्हे लोगों के मनोविज्ञान की बेहतर समझ थी। उन्होंने नमक कानून तोड़ने के लिए एक ऐसा बड़ा आयोजन किया जिसमें लाखों लोग पैदल निकले। फलस्वरूप दांडी मार्च ने अंग्रेजी सत्ता को हिलाकर रख दिया। 1930 के दशक में दिया गांधी का 'आत्मनिर्भरता का मॉडल' आज पुनः लौट आया है। गांधी के प्रबन्धन का सबसे बड़ा उद्देश्य था कि मनुष्य की जितनी गतिविधियाँ हो, सब आत्मनिर्भर हो। भारत से विदेशी शासन को मुक्त करने के लिए गांधी की स्पष्ट दृष्टि थी।

उन्होंने ब्रिटिश शासन की नैतिक कमजोरी की स्थिति के अनुरूप एक प्रभावी रणनीति का इस्तेमाल किया। गांधी सलाह देने से पहले स्वयं खुद पर प्रयोग करने पर विश्वास करते थे। उनके लिए ज्ञान का अर्थ आचरण से था। आचरण रहित ज्ञान को वे निरर्थक मानते थे। गांधी जी विचारों को लेकर समादेशन के पक्षधर थे। यही वजह है कि उन्होंने जन आंदोलन से लेकर शिक्षा, स्वास्थ्य और आर्थिक पहल में भी समाज के सबसे निचले तबके को भागीदार बनाने पर जोर दिया ताकि विकास में वह अपनी भागीदारी सुनिश्चित कर सके। निश्चित रूप से गांधी की यह भावना 'सबका साथ सबका विकास' उद्देश्य को चरितार्थ करती है।

गांधी जी की आर्थिक अवधारणा समसामयिकता को दर्शाता है। आर्थिक स्तर पर सुस्ती के बाद गांधी के सिद्धान्त अब ज्यादा सार्थक लगने लगे हैं। आज के समय में भी ज्यादा से ज्यादा रोजगार देने वाली औद्योगिक

इकाईयों और उद्योगों पर जोर देने पर सरकार का जोर है। उनका मानना था कि आर्थिक समृद्धि के साथ गांवों का सशक्तिकरण तमाम समस्याओं और मुद्दों को स्थानीय स्तर पर ही हल करता है। आज की आर्थिक सुस्ती को दूर करने के लिए सूक्ष्म, लघु और मझोले उद्योगों और श्रम आधारित गतिविधियों को बढ़ावा देने की जरूरत है। गांधी माँग और आपूर्ति में संतुलन लाने के भी पक्षधर थे, जो अर्थव्यवस्था को चलाने का मूलमंत्र माना जाता था। गांधी का मानना था कि भारत को असली आजादी तब मिलेगी जब हर जरूरी चीज के निर्माण के लिए हर आम किसान स्वतंत्र होगा। उनकी दांडी यात्रा की सफलता ने इस बात को पुख्ता किया। इसी पहल में उन्होंने सूत कातने और खेती करने के लिए सबको प्रोत्साहित करना शुरू किया। आजाद भारत में उन्होंने गाँवों का अंधाधुंध दोहन बंद करने की बात कही। वह बड़े स्तर पर औद्योगीकरण के विरोधी थे क्योंकि इससे ग्रामीणों का शोषण बढ़ेगा। उन्होंने चरखा को

गाँव की अर्थव्यवस्था का अहम हिस्सा बताया। उनका मानना था कि जब भोजन और कपड़े पर हर ग्रामीण का अधिकार होगा तब असल में वह आत्मनिर्भर बन सकेगा और यही असली ग्राम स्वराज होगा। वे ग्राम तंत्र के लिए राजनीतिक और सामाजिक व्यवस्था का विकेन्द्रीकरण आवश्यक मानते थे। उनका मानना था कि राज्य गाँव के लिए नियम न बनाएँ बल्कि गाँव के लोग ही पंचायत के माध्यम से अपने लिए नियम व पाँच साल की विकास योजनायें बनाये। 1920 के दशक में जब अंग्रेज और अंग्रेजी वस्तुओं से देश पटा हुआ था तब गांधी जी ने स्वदेशी आंदोलन शुरू किया। उन्होंने खादी को विकल्प के रूप में प्रस्तुत किया और आत्मनिर्भरता को बढ़ावा देने के लिए कताई और बुनाई को एक विचारधारा बना दिया।

गांधी जी को अपने देश की महिलाओं की योग्यता पर अटूट विश्वास था, वे मानते थे कि अहिंसा का अस्तित्व महिलाओं के हाथों में ही

सुरक्षित है। गांधी के स्वराज से प्रेरित होकर लाखों महिलाओं ने देश के सकल घरेलू उत्पाद में अपना अमूल्य योगदान दिया। गांधी का मानना था कि स्वयंसहायता से आत्मबल बढ़ता है और भय से मुक्ति मिलती है। गांधी को पूर्ण विश्वास था कि हिंसा और गरीबी से मुक्त समाज के निर्माण के लिए स्वराज की नींव को मजबूत बनाना होगा। अस्पृश्यता से मुक्ति, जातिगत भेदभाव की समाप्ति, हिन्दू–मुस्लिम एकता, स्वदेशी या स्थानीय, विकेन्द्रित रोजगार को बढ़ावा और अभय यानी भय से मुक्ति स्वराज के मजबूत स्तंभ है। महिलायें इस बात को मानती है कि स्वराज प्राप्त करना सतत् संघर्ष की प्रक्रिया है। इसमें सहनशक्ति, त्याग के साथ उन ताकतों से लड़ने का अथक साहस भी शामिल है जो चीज जीवन को दुष्कर बनाती है। गांधी अंदर–बाहर के स्वराज पर भरोसा करते थे जिसका तात्पर्य है अपने अंदर के लालच, ईर्ष्या और घृणा जैसे मनोभावों पर नियंत्रण और आत्म–अनुशासित या स्वयं पर

नियंत्रण, जिसे प्राप्त करना स्वराज पाने से भी दुरूह है।

विभिन्न जातियों व भाषाओं को एक छत के नीचे लाकर गांधी जी ने सामाजिक मान्यताओं को भी गंभीर चुनौती दी। उनके बारें में गुरुदेव रवीन्द्र नाथ टैगोर ने लिखा–''एक राजनीतिज्ञ के तौर पर, एक संगठन के तौर पर, जननेता के तौर पर या फिर एक नैतिक सुधारक के तौर पर, महानता में वह एक व्यक्ति के रूप में सबसे ज्यादा महान है। क्योंकि इनमें से कोई भी आयाम या गतिविधि उनकी मानवीयता को सीमित नहीं कर पाती है बल्कि सबको उनसे ही प्रेरणा मिलती है। गांधी जी को ऐसे ही याद किया जाना चाहिए क्योंकि सही मायने में वह एक महात्मा थे।

संदर्भ

1 ग्राम स्वराज– महात्मा गांधी।

2 भारत का स्वतंत्रता संघर्ष–डॉ0 विपिन चन्द्रा।

3 राजनीति विज्ञान– डॉ0 जे0सी0 जौहरी।

4 राष्ट्रीय आंदोलन और भारत का संविधान–डॉ0 अशोक कुमार।

5 भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन और राष्ट्रवाद–इरफान हबीब।

6 भारत राष्ट्रीय आंदोलन का इतिहास–डॉ0 ए0के0 मित्तल।

7 भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद–डॉ0 सत्या एम0 राय।

ISBN: 978-81-951568-9-4

महात्मा गाँधी एवं सत्याग्रह

डॉ0 शकुन्तला

एसो0प्रो0 राजनीति विज्ञान

डॉ0 भीमराव आम्बेडकर

राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय

फतेहपुर।

महात्मा गाँधी आधुनिक भारत के महान जननायक, समाज सुधारक, नैतिक दार्शनिक तथा कर्मयोगी थे। उन्होंने सत्य, अहिंसा, स्वदेशी, सर्वोदय, स्वराज, सत्याग्रह, धर्म, न्याय आदि विषयों पर अपने विचारों से सम्पूर्ण विश्व को प्रभावित किया। गाँधी जी अपने विचारों को न केवल दृढ़ता एवं आग्रह के साथ रखते थे बल्कि

उसके आचरण के द्वारा भी उसका पुष्टीकरण करते थे।

सन् 1891 में गाँधी जी बैरिस्टर बनकर लन्दन से भारत लौटे। दो वर्ष बाद एक मुकदमें की पैरवी के सिलसिले में उन्हें दक्षिण अफ्रीका जाना पड़ा। वहाँ उन्होंने देखा कि अँग्रेजों के शासन में भारतीयों को अत्यन्त कष्ट और अपमान का जीवन बिताना पड़ रहा है। इसके प्रतिकार के लिए भारतीयों के पास कोई विशेष शक्ति नहीं थी।

दक्षिण अफ्रीका में गाँधी जी 20 वर्ष रहे। इन बीस वर्षों में वे अफ्रीका में बसे हुए भारतीयों एवं काले लोगों को उनके मानव सुलभ अधिकार दिलाने का प्रयत्न करते रहे। उन्होंने प्रत्येक दमन का डटकर मुकाबला किया और किसी भी स्थिति में समझौता करने से इनकार कर दिया। यहीं पर उन्होंने हिन्दू–मुस्लिम–सिखों में मूल एकता के विचार को आत्मसात किया। उन्होंने समझ लिया कि सभी धर्मों का लक्ष्य एक ही है। गाँधी जी ने वहीं

सत्याग्रह की शक्ति अजमाने की शुरूआत की। उस आन्दोलन में उन्हें बहुत सीमा तक सफलता भी मिली थी। अपने उत्तम अनुभव के साथ गाँधी जी ने भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में प्रवेश कर उसे जन आन्दोलन बनाया।

सन् 1914 में गाँधी जी एक सफल आन्दोलनकारी और राजनीतिज्ञ के रूप में भारत पहुँचे परन्तु तत्काल ही राजनीति में छलांग लगाने की अपेक्षा उन्होंने परिस्थितियों का दूर से अध्ययन करना उचित समझा। अहमदाबाद के पास उन्होंने साबरमती सत्याग्रह आश्रम की स्थापना की।

इन दिनों गाँधी जी अँग्रेजों की शराफत और उदावादिता से बहुत प्रभावित थे इसलिए प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान में उन्होंने भारत में घूम–घूमकर भारतीयों को युद्ध में अँग्रेजों का साथ देने को कहा परन्तु विश्वयुद्ध के पश्चात् कुछ घटनाओं ने अँग्रेजों के प्रति उनकी सारी आस्था को समाप्त कर दिया।

रोलट एक्ट जिसके अनुसार किसी भी भारतीय पर शान्ति भंग का आरोप लगाकर बिना मुकदमा चलाये जेल में डाला जा सकता था ने पहले विस्फोटक के रूप में कार्य किया। गाँधी जी ने इस एक्ट का घोर विरोध किया।

ऐसा ही एक प्रदर्षन जलियावाला बाग में हुआ जहाँ अँग्रेज सरकार ने निहत्थे और निर्दोष भारतीय बालकों, युवकों और वृद्धों पर बिना पूर्व सूचना के गोली वर्षा करवा दी जिससे सम्पूर्ण देश में विरोध की आग फैल गयी।

अप्रैल 1921 में खिलाफत आन्दोलन के साथ ही असहयोग आन्दोलन का बिगुल बजा दिया गया। गाँधी द्वारा फूंके हुए इस शंखनाद ने देश के नगर–नगर में, गाँव–गाँव में राष्ट्रीय जागरण की लहर दौड़ा दी परन्तु चौरी–चौरा काण्ड के कारण इस आन्दोलन को बन्द करना पड़ा।

सन् 1931 में गाँधी जी ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन चलाया। जनता की उनके प्रति असीम

श्रद्धा और अटूट विश्वास ने आन्दोलन को बहुत व्यापक स्वरूप दिया। अभी यह आन्दोलन सफलतापूर्वक चल ही रहा था कि उनका लार्ड इरविन से समझौता हो गया। समझौते के फलस्वरूप गाँधी जी ने आन्दोलन बन्द करके दूसरी गोलमेज कॉन्फ्रेस में भाग लेना स्वीकार किया।

गोलमेज कॉन्फ्रेस की असफलता के बाद गाँधी जी 1934 में वर्धा आश्रम में समाज सुधार के कार्य में फिर जुट गये। सन् 1939 में दूसरा विश्वयुद्ध होने तक वे शान्त ही रहे, परन्तु युद्ध के प्रारम्भ होने पर बिना भारतीयों की इच्छा जाने अँग्रेजों ने भारत को युद्ध में शामिल कर लिया। 08 अगस्त 1942 को गाँधी जी ने 'अँग्रेजो भारत छोड़ो' आन्दोलन चलाया। वे गिरफ्तार कर लिए गए। युद्ध समाप्ति पर उन्हें रिहा कर दिया गया।

सन् 1947 में कांग्रेस के प्रयत्नों से देश को स्वतन्त्रता प्राप्त हुई। सन् 1920 से लेकर सन् 1947 तक भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का काल गाँधी युग

कहलाता है क्योंकि इस युग में भारतवर्ष में जो कुछ हुआ उसका नेतृत्व गाँधी जी ने किया था। इस युग की घटनाओं में गाँधी जी की क्रमानुसार भूमिकाएं प्रमुख हैं–

1. सन् 1920–21 का असहयोग आन्दोलन।

2. सन् 1930 का नमक सत्याग्रह।

3. सन् 1931 का इर्विन समझौता।

4. सन् 1931 का द्वितीय गोलमेज सम्मेलन।

5. सन् 1932 में सरकार का साम्प्रदायिक निर्णय और गाँधी जी द्वारा आमरण अनशन।

6. हरिजनोद्धार और खादी ग्रामोद्योग के रचनात्मक कार्य।

7. द्वितीय महायुद्ध में भारत का सहयोग और क्रिप्स योजना की असफलता।

8. सन् 1942 का भारत छोड़ो आन्दोलन और गाँधी जी की जेल यात्रा।

9. पूना में गाँधी जी का 21 दिन का उपवास।

10. सन् 1944 में शिमला सम्मेलन की असफलता।

11. सन् 1945 में युद्ध के समाप्त होने पर कैबिनेट मिशन का भारत आना।

12. माउन्टबेटन योजना और भारत विभाजन।

13. 15 अगस्त को स्वतन्त्रत भारत की घोषणा।

भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का गाँधी जी ने सत्य, अहिंसा तथा सत्याग्रह के साधनों से सफल संचालन किया। प्रारम्भ में अँग्रेजों ने इस सत्याग्रह आन्दोलन को 'मूर्खतापूर्ण कार्य' कहा। शीघ्र ही उन्हें ज्ञात हो गया कि अहिंसा एवं

सत्याग्रह का अस्त्र बन्दूक और तलवारों से अधिक प्रभावशाली होता है। राजनीति के कर्म क्षेत्र में उन्होंने जिस सत्याग्रह रूपी हथियार की अनोखी खोज कीं वह भी आध्यात्मिकता के आधार पर ही प्रतिपादित किया। गाँधी जी का सत्याग्रह एक आदर्श है। कर्मयोग का एक व्यवहारिक दर्शन है। सत्याग्रह गाँधीवाद का वह केन्द्रबिन्दु हैं जिसके चारो ओर उनकी अन्य अवधारणाएं यथा–राजनीति का आध्यात्मीकरण, साधनों तथा साध्य की पवित्रता विश्व की नैतिक प्रकृति और अपने सिद्धान्तों के लिए मर–मिटने तक का संकल्प आदि चक्कर काटती हैं।

सत्याग्रह सत्य के लिए नैतिक दबाव है। 'सत्याग्रह' का शाब्दिक अर्थ है– सत्य के लिए आग्रह करना, सत्य के लिए अड़े रहना।

गाँधी जी के अनुसार ''सत्याग्रह अन्याय के खिलाफ एक ऐसा अहिंसा संघर्ष है जिसमें मन, वचन तथा कर्म से हिंसा का त्याग करके अहिंसा

को एक सिद्धान्त के रूप में स्वीकार किया जाता है। गाँधी जी की मान्यता थी कि सत्याग्रह नैतिक रूप में सक्षम सक्रिय व सर्तक लोगों के द्वारा किया जाने वाला संघर्ष है न कि असहाय, कायर तथा डरपोक लोगों का।''

सत्य क्या है? इसका निर्णय कैसे हो? जब अहिंसा का पालन करते हुए मनुष्य आत्मशुद्धि कर लेता है तो उसकी अंतरात्मा ही सत्य का दर्पण बन जाती है। जब मनुष्य को यह विश्वास हो जाय कि वह सत्य के मार्ग पर चल रहा है, तब चाहे उसे जितनी भी बाधाएं और यातनाएं क्यों न सहन करनी पड़े– अपने मार्ग से तनिक भी विचलित न होना सत्याग्रह है। सत्य की सिद्धि कठिन तो है परन्तु अन्ततः विजय उसकी ही होती है।

''सत्यमेव जयते नानृतम'' (सत्य की ही जय होती है अनृत या असत्य की नहीं)। अतः सत्याग्रही कभी पराजय स्वीकार नहीं करता है। जब अत्याचारी शासक यह समझ जाता है कि वह

अपने प्रजाजनों को मार डालने पर भी अपनी इच्छा उनसे नहीं मनवा सकता तो वह प्रजा का दमन करना निर्रथक समझता है और इसे छोड़ देता है। इसके अतिरिक्त उसके हृदय पर सत्याग्रहियों द्वारा झेली जाने वाली कठोर यातनाओं और कष्टों का भी प्रभाव पड़ता है। सत्याग्रही द्वारा प्रसन्नतापूर्वक कष्ट झेलने से अत्याचारी में मनुष्यता की प्रसुप्त भावना जाग्रत हो उठती है। इसके परिणामस्वरूप अन्त में एक ऐसी स्थिति आ जाती है कि अत्याचारी की आँखे खुल जाती है, उसे अपने किये अत्याचारों पर पश्चाताप होने लगता है। उस समय वह सत्याग्रहियों से समझौता कर लेता है और सत्याग्रह की विजय होती है। यह आत्मबल द्वारा अत्याचारी के हृदय परिवर्तन पर बल देने वाली प्रक्रिया है।

गाँधी जी के अनुसार यह आत्मबल का शरीर बल अथवा पशु बल के साथ संघर्ष है। इसके पशुबल पर आत्मबल की विजय निश्चित है। इस संघर्ष में संख्या का महत्व नहीं है। एक भी सच्चरित्र

और दृढ़ प्रतिज्ञ सत्याग्रही बड़े से बड़े साम्राज्य से टक्कर ले सकता है। इसी सत्याग्रह की विधि को गाँधी जी ने स्वराज्य की प्राप्ति के लिए अपनाया।

'हिन्द स्वराज्य' में गाँधी जी ने 1908 में सत्याग्रही के आवश्यक गुण सत्यनिष्ठा या ईमानदारी, निर्भयता, ब्रह्मचर्य, निर्धनता और अहिंसा बताये थे। हिन्द स्वराज्य में प्रतिपादित गुणों के अतिरिक्त गाँधी जी ने कुछ अन्य गुणों में वृद्धि करके 11 गुणों का पालन और साधना आवश्यक बतायी। ये गुण है– अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, शरीर श्रम, अस्वाद, निर्भयता, सब धर्मों को समान दृष्टि से देखना, स्वदेशी तथा अस्पृश्यता निवारण।

सत्याग्रही के वैयक्तिक जीवन में गाँधी जी ने प्रधान रूप से निम्नलिखित नियमों के पालन पर बल दिया था।

(1) सत्याग्रही अपने मन में गुस्से को कोई स्थान नहीं देगा।

(2) यह विरोधियों के रोष को सहन करेगा।

(3) ऐसा करते हुए वह बदले की भावना से विरोधियों पर हाथ नहीं उठायेगा। शत्रु द्वारा क्रोधवश में दी गयी आज्ञा दण्ड या अन्य किसी प्रकार से भय के सामने अपने सिर नहीं झुकायेगा।

(4) जिस समय कोई अधिकारी सविनय आज्ञा भंग करने वाले को पकड़ने आयेगा तो वह स्वयं गिरफ्तार हो जायेगा। जब कोई अधिकारी उसकी सम्पत्ति जब्त करने अथवा उसे ले जाने के लिए आयेंगे तो वह उनका प्रतिकार नहीं करेगा।

(5) यदि सत्याग्रही किसी सम्पत्ति का ट्रस्टी है तो वह उसे सरकार के कब्जे में देने से इन्कार करेगा, भले ही उसके प्राण खतरे में पड़ जाएं।

(6) सविनय कानून भंग करने वाला विरोधियों का भी अपमान नहीं करेगा, ऐसा कोई नारा नहीं लगायेगा जो अहिंसा के विरूद्ध हो।

(7) इस संघर्ष में यदि कोई किसी अधिकारी का अपमान करता है अथवा उस पर हमला करता है तो सविनय आज्ञा भंगकारी अपने प्राणों को संकट में डालकर भी इस अधिकारी की रक्षा करेगा।

किशोरीलाल मशरूवाला ने लिखा है– ''सत्याग्रह जितनी रीतियों से हो सकता है उन सबको गिनाया नहीं जा सकता है अधर्म का स्वरूप, उसकी तीव्रता, उसका आचरण करने वाले व्यक्ति या समाज की विशेषताएं, उसका और अपना सम्बन्ध हमारा तथा जिसने पक्ष लिया है उसके जीवन में उस अधर्म को मिटा डालने की प्राप्त आत्मसिद्धि। इन सब बातों पर सत्याग्रह की पद्धति, प्रकार और मात्रा निर्भर होती है। इस प्रकार सत्याग्रह में समझाने बुझाने से लेकर

उपवास, असहयोग, सविन अवज्ञा, कुटुम्ब–समाज–राज्य का त्याग, अपने न्यायपूर्ण अधिकार का शान्तिपूर्ण उपयोग और यह सब करते हुए जो संकट आए उनको सह लेना आदि सत्याग्रह के अनेक रूप होते है फिर भी सत्याग्रह के मुख्य रूप है– असहयोग, सविनय अवज्ञा, हिजरत, उपवास और हड़ताल।

(1) असहयोग (Non-Co-operation)–

साधारण शब्दों में असहयोग का अर्थ है 'अन्यायी शासन से असहयोग करना।' गाँधी जी का कहना था कि जब शासन का व्यवहार निरंकुश हो जाएं तो जनता को शासक के कार्य से अलग हो जाना चाहिए। जब जनता असहयोग करेगी तो शासन सर्वथा निराधार होकर शीघ्र समाप्त हो जायेगा किन्तु असहयोग के समय सत्याग्रही को सर्वथा अहिंसक होना चाहिए। 1920 में ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरूद्ध गाँधी जी ने यह आन्दोलन चलाया था। असहयोग का प्रमुख साधन है हड़ताल, सामाजिक बहिष्कार, धरना आदि।

(2) सविनय अवज्ञा (Civil Disobedience)– सविनय अवज्ञा सत्याग्रह का सबसे प्रभावषाली रूप है। गाँधी जी ने 1930 में सविनय अवज्ञा आन्दोलन चलाया था। इसके द्वारा अन्यायपूर्ण कानूनों की अहिंसात्मक ढंग से अवहेलना की जाती है। गाँधी जी इस हथियार का प्रयोग संयमी सत्याग्रहियों द्वारा करवाना चाहते है।

(3) हिजरत (Hijrat)– हिजरत का अर्थ होता है– एक स्थान से दूसरे स्थान पर चले जाना। गाँधी जी यह समझते थे कि जब किसी देष में शासन के अत्याचार असह्य हो जाए तो सत्याग्रही को वह स्थान छोड़कर चला जाना चाहिए। गाँधी जी का मानना था कि हिजरत से हिंसा टल सकती है जिससे सत्याग्रही व अत्याचारी दोनों का ही फायदा होता है। हिजरत के कारण निरंकुष व्यक्ति को यह दण्ड मिलता है कि उसका काम–काज बन्द हो जाता है।

(4) उपवास (Fasting)– उपवास सत्याग्रह का एक अत्यन्त शक्तिशाली रूप है। गाँधीजी की मान्यता थी कि सार्वजनिक उपवास जनता की आत्मशक्ति में वृद्धि करता है। पिछली भूलों के प्रति सावधान करता है अन्याय का अहिंसात्मक प्रतिरोध करने की क्षमता प्रदान करता है और विपथगामी लोगों में सदभावना का संचार करता है।

(5) हड़ताल (Strike)– हड़ताल को गाँधीजी सत्याग्रह का अन्तिम हथियार मानते हैं जिसका प्रयोग सत्याग्रह की प्रथम चार तरीको के असफल होने पर करना चाहिए। गाँधी जी का सुझाव है कि शासन का अत्याचार हद पार करने लगे तो सत्याग्रही को हड़ताल पर चले जाना चाहिए। हड़ताल में असहयोग व 'सविनय अवज्ञा' दोनों समाहित हो जाता है। हड़ताल में शासक का काम–काज पूरी तरह बन्द हो जाता है जिससे मजबूर होकर शासक को हड़तालियों से समझौता करना पड़ता है। यह उल्लेखनीय है कि गाँधीवाद हड़ताल वर्तमान हड़ताल से भिन्न है।

वर्तमान हड़ताल में जो हिंसात्मक प्रदर्शन देखने को मिलता है वह गाँधीवादी हड़ताल में नहीं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि युद्ध और क्रान्ति के विकल्प के रूप में राजनीतिक क्षेत्र में सत्याग्रह के साधन का अविष्कार गाँधीजी की एक बहुत बड़ी देन है। सत्याग्रह का विचार पहले पारिवारिक क्षेत्र तक ही सीमित था लेकिन गाँधीजी ने इसे सामूहिक और व्यापक रूप प्रदान किया तथा सम्पूर्ण सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्र में इसका प्रयोग कर दिखाया। यह युद्ध एवं क्रान्ति समान महत्वपूर्ण हैं। मार्क्स और लेनिन जिस परिर्वतन को हिंसापूर्ण क्रान्ति से करना चाहते थे, गाँधी जी ने उसे अहिंसात्क सत्याग्रह से सम्पन्न किया और शताब्दियों तक पराधीनता के पाश में जकड़े हुए भारत को महात्मा गाँधी ने स्वाधीनता का उज्ज्वल प्रकाश प्रदान किया।

सन्दर्भ

1 आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन– अवस्थी एवं

अवस्थी।

2 भारत का स्वतन्त्रता संघर्ष– विपिन चन्द्र।

3 राजनीतिक चिन्तन की रूपरेखा– ओम प्रकाश गाबा।

4 आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन– डॉ0 वी0 पी0 वर्मा।

5 राजनीति विचारक विश्वकोष– ओम प्रकाश गावा।

6 भारत का संविधान– प्रो0 बी0एन0 खन्ना एवं निर्मला खन्ना।

7 भारतीय राजनीतिक व्यवस्था– स्पेक्ट्रम इण्डिया।

8 भारत का संवैधानिक विकास और संविधान– सुभाष कश्यप।

9 हमारा संविधान– सुभाष कश्यप।

ISBN: 978-81-951568-9-4

महात्मा गाँधी राष्ट्रीय आंदोलन का एक अध्याय

श्रीमती सुमन कुमारी
सहायक प्रोफेसर .राजनीति विज्ञान विभाग
डॉ. भीमराव अम्बेडकर राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
ऊँचाहार, रायबरेली

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी एक ऐसा नाम जिससे केवल भारत ही नहीं अपितु पूरी दुनिया परिचित हैं। विश्व विख्यात वैज्ञानिक आइसंटीन ने इनके बारे में कहा था कि ''आने वाली पीढ़ियाँ शायद मुश्किल से ही विश्वास कर पायेगी कि गाँधी

जैसा हाड–माँस का पुतला कभी इस धरती पर पैदा हुआ था, उन्होंने गाँधी को इंसानों में एक चमत्कार कहा है।'' महात्मा गाँधी सत्य एवं अहिंसा के पुजारी थे। सत्याग्रह का सर्वप्रथम सफल प्रयोग इन्होंने दक्षिण अफ्रीका में किया। भारतीय राजनीति में इनका प्रवेश 1917 चम्पारण सत्याग्रह से माना जाता है। महात्मा गाँधी के प्रयासों के फलस्वरूप ब्रिटिश सरकार ने तिनकटिया पद्धति'' समाप्त की थीं।

अहमदाबाद का मजदूर आंदोलन (1918) एवं गुजरात का खेड़ा सत्याग्रह (1918) इनके बढ़ते कदम को दर्शा रहा था। खिलाफत आंदोलन (1919–22 ई.) में भी महात्मा गाँधी ने अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद ब्रिटेन एवं तुर्की के मध्य होने वाली सेवर्स की संधि से तुर्की के सुल्तान के समस्त अधिकार छिन गए। संसार भर के मुसलमान तुर्की के सुल्तान को अपना खलीफा मानते थे। प्रथम विश्व युद्ध में भारतीय मुसलमानों ने तुर्की के खिलाफ अंग्रेजों की इस शर्त पर सहायता की कि वे भारतीय मुसलमानों के धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप न करे और

साथ ही उनके धर्म स्थलों की रक्षा करे। परन्तु, युद्ध में इंग्लैण्ड की विजय के बाद सरकार अपने वायदे से मुकर गई। भारतीय मुसलमान ब्रिटिश सरकार से नफरत करने लगे और ऐसे मौके हिन्दू मुस्लिम एकता के लिए उपर्युक्त समझा गया। महात्मा गाँधी ने मुसलमानों के साथ सहानुभूति व्यक्त की। 23 नवम्बर 1919 ई. को दिल्ली में ''अखिल भारतीय खिलाफत कमेटी का अधिवेशन'' हुआ। और गाँधीजी को इसका अध्यक्ष चुना गया। इनके सुझाव पर असहयोग एवं स्वदेश की नीति अपनायी गई।''

भारतीय इतिहास में खिलाफत आंदोलन का अपना विशेष महत्व हैं। इस आंदोलन ने हिन्दू मुस्लिम एकता स्थापित करने में महत्वपूर्ण कार्य किया। 1924 ई. में यह आंदोलन उस समय समाप्त हो गया, जब तुर्की के कमाल पाशा के नेतृत्व में बनी सरकार ने खलीफा के पद को समाप्त कर दिया।[1]

खिलाफत आंदोलन के बाद असहयोग आंदोलन भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में एक महत्वपूर्ण कदम था। यह महात्मा गाँधी द्वारा चलाया गया प्रथम जन आंदोलन था। इस आंदोलन में महात्मा गाँधी एक जन नेता के रूप में उभरें। सितम्बर 1920 के कलकत्ता के विशेष कांग्रेस अधिवेशन में महात्मा गाँधी ने कहा कि "अंग्रेजी सरकार शैतान है जिसके साथ सहयोग संभव नहीं, अंग्रेज सरकार को अपनी भूलो पर कोई दुःख नहीं हैं। अतः हम कैसे स्वीकार कर सकते हैं कि नवीन व्यवस्थापिका हमारे स्वराज्य का मार्ग प्रशस्त करेंगी। स्वराज की प्राप्ति के लिए हमारे द्वारा "प्रगतिशील, अहिंसात्मक असहयोग' की नीति अपनाई जानी चाहिए।"

असहयोग प्रस्ताव की पुष्टि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने दिसम्बर, 1920 के नागपुर अधिवेशन में की। इस प्रस्ताव के कुछ महत्वपूर्ण बिंदु इस प्रकार है।

1. उपाधियों को लौटाना, अवैतनिक पदों को छोड़ना तथा स्थानीय संस्थाओं में मनोनीत पदों से त्यागपत्र देना।

2. सरकारी आयोजनों, दरबारों तथा सरकारी अधिकारियों के सम्मान में आयोजित सरकारी व गैर सरकारी कार्यक्रम में उपास्थित न होना।

3. सरकारी मान्यता प्राप्त, सहायता प्राप्त या नियमित स्कूलों व महाविद्यालयों से बच्चों व विद्यार्थियों को शनैः–शनैः निकालना तथा विभिन्न प्रान्तों में राष्ट्रीय विद्यालयों व महाविद्यालयों की स्थापना करना।

4. वकीलों व वादियों द्वारा ब्रिटिश न्यायालयों का शनैः–शनैः बहिष्कार करना तथा वकीलों के सहयोग से मामले निपटाने के लिए व्यक्तिगत पंच न्यायालयों की स्थापना करना।

5. सैनिकों, लिपको व श्रमिक वर्गों द्वारा मेसोपोटामिया में सेवा भर्ती से इन्कार करना।

6. 1919 के एक्ट द्वारा परिष्कृत परिषदों के चुनाव में उम्मीदवारी की वापसी करना तथा

मतदाताओं द्वारा अपने को उम्मीदवार प्रस्तुत करने वाले व्यक्ति को चुनने से इन्कार करना।

7. स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग करना, चरखा चलाना तथा खादी पहनना।''[2]

इस आंदोलन में भारतीय जनता ने बढ़–चढ़ कर हिस्सा लिया। समाज के निम्न वर्ग से लेकर उच्च वर्ग तक के लोग इसमें शामिल थे। महात्मा गाँधी ने कैसर–ए–हिन्द की उपाधि वापस कर दी। जमुना लाल बजाज ने अपनी राय बहादुर की उपाधि वापस कर दी। कई वकीलों ने अपनी वकालत छोड़ दी जैसे, मोतीलाल नेहरू डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, जवाहर लाल नेहरू एवं अरुणा आसफ अली।

विद्यार्थियों ने सरकारी स्कूल एवं कालेजों का बहिष्कार किया। इस समय कई स्वदेशी शैक्षिक संस्थानों की स्थापना हुई। जैसे काशी विद्यापीठ, बिहार राष्ट्रीय विश्वविद्यालय। इस आंदोलन में मुस्लिम नेताओं ने भी बढ़–चढ़ कर हिस्सा लिया। ''असहयोग आंदोलन में गिरफ्तार होने वाले पहले

प्रमुख नेता मुहम्मद अली थे।"[3] इस आंदोलन में हिन्दू मुस्लिम एकता के स्पष्ट दर्शन होते हैं।

इस आंदोलन ने ब्रिटिश सरकार की नींद उड़ा कर रख दी। ब्रिटिश सरकार जनता के बढ़ते उत्साह को देख काफी चिंतित थी। वह समझ नहीं पा रही थी, कि आगे क्या किया जाये। असहयोग आंदोलन को आर्थिक मजबूती प्रदान करने के लिए 1921 ई. में 'तिलक स्वराज फण्ड' की स्थापना की गई। लगभग 6, महीने के अन्दर इसमें लगभग 7 करोड़ रुपये एकत्रित हो गए। विदेशी वस्तुओं की होली जलाई गई। स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग ज्यादा से ज्यादा किया जाने लगा।

जनता के बढ़ते उत्साह का दमन करने के लिए ब्रिटिश सरकार ने दमन–कारी नीतियाँ अपनायी "सितम्बर 1921 तक चितरंजनदास, मोतीलाल नेहरू, लाजपतराय, मौलाना आजाद और गाँधी जी के अतिरिक्त सभी मुख्य नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया। इस समय कुल गिरफ्तार व्यात्तिंयों की संख्या

60 हजार थी, लेकिन जनता का उत्साह कम होने का नाम ही नहीं ले रहा था। 17 नवम्बर 1921 को जब प्रिंस ऑफ वेल्स बम्बई उतरे तो काँग्रेस के निश्चय के अनुसार बम्बई में उनका स्वागत हड़ताल से किया गया। कलकत्ताा और अन्य स्थानों पर भी प्रिंस का स्वागत हड़ताल और विरोध प्रदर्शनों से ही किया गया। रजनी पामदत्त के शब्दों में 'जनता की नफरत का ऐसा व्यापक और सफल प्रदर्शन पहले कभी नहीं हुआ था।' जनता के अपूर्व उत्साह और ब्रिटिश सरकार के दमन को देखते हुए आंदोलन के अन्तर्गत कोई नवीन कदम उठाना जरूरी हो गया था। अतः 1 फरवरी 1922 को महात्मा गाँधी ने वायसराय को पत्र लिखते हुए चेतावनी दी कि यदि 7 दिन के अन्दर सरकार ने अपनी दमन–नीति में परिवर्तन नहीं किया तो बारडोली और गुण्टुर में 'सविनय अवज्ञा आंदोलन प्रारम्भ कर दिया जाएगा, जिसमें 'कर न दो' का कार्यक्रम भी शामिल होगा। लेकिन 7 दिन का कार्यक्रम समाप्त होने के पूर्व ही एक ऐसी घटना हुई, जिसने सम्पूर्ण स्थिति को बदल दिया।''[4]

वह घटना थी चौरी चौरा काण्ड। 5 फरवरी 1922 को उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जिले के चौरी–चौरा नामक स्थान पर हुई घटना से महात्मा गाँधी को काफी आघात पहुँचा। यहाँ पर उग्र भीड़ ने थाने में आग लगा दी, जिससे 23 सिपाहियों की मृत्यु हो गई थीं। अहिंसा के पुजारी गाँधी जी इस हिंसा को बर्दाश्त नहीं कर पाये। इस घटना से क्षुब्ध होकर इन्होंने असहयोग आंदोलन स्थगित कर दिया। इस आंदोलन के स्थगन की काफी तीव्र आलोचना हुई।

पंडित जवाहरलाल नेहरू, लाला लाजपत राय, मोतीलाल नेहरू, सी. आर. दास एवं सुभाषचन्द्र बोस जैसे नेताओं ने तीव्र आलोचना की। सुभाष चन्द्र बोस ने कहा कि ''ऐसे समय पर जबकि जनता का उत्साह बहुत ऊँचा था, तब पीछे हटने का आदेश देना राष्ट्रीय विपदा से कम नहीं था।

यद्यपि यह आंदोलन अपने उद्देश्य पूर्ति में सफल नहीं रहा परन्तु राष्ट्रीय आंदोलन में इसकी

महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इसने ब्रिटिश सरकार को यह एहसास दिला दिया कि भारतीय जनता अब एक जन आंदोलन करने के लिए तैयार है और गाँधी जी के रूप में उसे एक जन–नायक मिल चुका हैं।

प्रो. कूपलैण्ड के अनुसार ''गाँधीजी ने वह कार्य किया, जो तिलक नहीं कर सके थे उन्होंने राष्ट्रीय आंदोलन को एक क्रांतिकारी आंदोलन के रूप में परिवर्तित कर दिया। आंदोलन ने देश को स्वतंत्रता के लक्ष्य की ओर अग्रसर किया।''[5]

असहयोग आंदोलन स्वतंत्रता प्राप्ति की ओर बढ़ता हुआ एक कदम था। असहयोग आंदोलन के बाद सविनय अवज्ञा आन्दोलन महात्मा गाँधी द्वारा चलाया गया। दूसरा प्रमुख राष्ट्रीय आंदोलन था। इस आंदोलन को शुरू करने से पहले महात्मा गाँधी ने वायसराय के सम्मुख 11 सूत्री माँगें रखी। परन्तु ब्रिटिश सरकार ने इस माँग पर बिलकुल ध्यान नहीं दिया। 2 मार्च 1930 को गाँधी जी ने वायसराय

को एक पत्र लिखा। जिसमें उन्होंने लिखा था ''मैंने घुटने टेककर रोटी माँगी पर उसके स्थान पर पत्थर मिला। ——————— अब सविनय अवज्ञा आंदोलन ही देश को अराजकता तथा गुट अपराधों से बचा सकती है, क्योंकि इस समय देश में सर्वत्र हिंसा व्याप्त है जो भाषण, प्रस्तावों व सम्मेलनों को सुनने के बजाए केवल प्रत्यक्ष कार्यवाही में विश्वास करती है।''

सविनय अवज्ञा आंदोलन को शुरू करने के लिए गाँधीजी ने नमक जैसी साधारण उपभोग की वस्तु को चुना है। समाज के सभी वर्गों द्वारा नमक अपने दैनिक जीवन में प्रयोग में लाया जाता है। नमक जैसी साधारण वस्तु पर कर लगाना इस बात को दर्शाता था कि ब्रिटिश सरकार का दमन अपने चरम सीमा पर पहुँच गया है।

12 मार्च 1930 को गाँधीजी ने अपने 78 अनुयायियों के साथ साबरमती आश्रम से दांडी मार्च प्रारम्भ किया। लगभग 241 मील की यात्रा कर गाँधी

जी 5 अप्रैल को दांडी पहुँचे। 6 अप्रैल को प्रातः काल गाँधी जी समुद्र तट पर पहुँचे तो सरोजनी नायडू ने उनका स्वागत करते हुए कहा ''हे विधि भंजक (कानून तोड़ने वाले) तुम्हारा स्वागत है।' गाँधी जी ने वहाँ नमक एकत्र कर नमक कानून को भंग कर दिया और इस प्रकार 6 अप्रैल 1930 ई. को सविनय अवज्ञा आंदोलन प्रारम्भ हो गया।''[6]

सुभाषचन्द्र बोस ने गाँधीजी के दांडी मार्च की तुलना नेपोलियन के पेरिस मार्च और मुसोलिनी के रोम मार्च से की है।

सविनय अवज्ञा आंदोलन लगभग–लगभग पूरे भारत में अपना प्रभाव दिखाने लगा। पाश्ंचिमोत्तर प्रांत में यह 'लाल कुर्ती आंदोलन' के नाम से जाना जाता है। पूर्वोत्तर क्षेत्र में यह जियालरंग आंदोलन के नाम से जाना जाता है। बम्बई में धरसना इसका प्रमुख केन्द्र था। दक्षिण भारत में इसका व्यापक प्रसार था।

''गाँधी जी ने अहिंसा का महत्व समझाते हुए इस बात को रेखांकित किया कि जहाँ भी हो सके नमक कानून को लेकर सिविल नाफरमानी आरम्भ की जानी चाहिए। लोगों को शराब तथा विदेशी कपड़ों की दुकानों के सामने धरना देना चाहिए तथा कर अदायगी का बहिष्कार करना चाहिए, लोग 'अपना मुकदमा कचहरी में न ले जाएं तथा वकील अपनी वकालत बंद कर दे, सरकारी नौकरी छोड़ दें ————————— मैं केवल एक शर्त रखता हूँ कि स्वराज पाने को सत्य और अहिंसा की हमारी प्रतिज्ञा का ईमानदारी से पालन किया जाना चाहिए।''[7]

गाँधीजी का कहना था कि ''पानी से पृथक'' नमक नाम की कोई चीज नहीं है।[8]

इस आंदोलन में महिलाओं ने अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। ''पूर्वी भारत में चौकीदारी के लिए कर अदा करने से लोगों ने मना कर दिया। गुजरात में लोगों ने भू—राजस्व देने से इन्कार कर दिया। मध्य भारत की रियासत छतरपुर में करों की न

अदायगी का एक आंदोलन चला, जिसका नेता डाकू मंगल सिंह था। उत्तर प्रदेश में भी कर न देने का एक आंदोलन चलाया गया। महाराष्ट्र कर्नाटक और मध्य भारत में जंगल नियमों के उल्लंघन में आंदोलन चलाया गया। इस आंदोलन से भारत का आयात घट कर 1/3 हो गया। बम्बई की 14 अंग्रेजी मिलें बंद हो गई। सिगरेट का आयात घटकर 1/6 हो गया। भारतीय सूती वस्त्र उद्योग में कई गुना की वृद्धि हुई। इस संघर्ष के प्रति कठोर दमन का रास्ता अपनाया गया। गाँधी जी सहित अन्य नेताओं तथा 90,000 से अधिक सत्याग्रही जेल में बंद कर दिये गए। इस समय साइमन कमीशन की रिपोर्ट प्रस्तुत किए जाने से तीन गोलमेज सम्मेलन का आयोजन किया गया। जिसमें कांग्रेस ने केवल दूसरे सम्मेलन में भाग लिया।''[9]

5 मार्च 1931 ई. को गाँधी–इरविन समझौता हुआ। इस समझौते को ''दिल्ली पैक्ट' के नाम से भी जाना जाता है। इस समझौते के तहत सविनय अवज्ञा आंदोलन स्थगित कर दिया गया। यह

निश्चित किया गया कि कांग्रेस निकट भविष्य में होने वाले दूसरे गोलमेज सम्मेलन में भाग लेगी।

इस समझौते की मिश्रित प्रतिक्रिया हुई। कई लोगों ने इसकी प्रशंसा की तो दूसरी तरफ इसकी तीव्र आलोचना हुई। ''गाँधी ने करांची कांग्रेस अधिवेशन (मार्च 1931) में इस सभी आलोचना को यह कहकर क्षीण कर दिया कि इस आंदोलन ने अहिंसा की महान ताकत को प्रदर्शित कर दिया तथा स्वराज्य कभी भी हिंसक तरीके से नहीं पाया जा सकता।''[10]

द्वितीय गोलमेज सम्मेलन (7 सितम्बर, 1931 ई. से 1 दिसम्बर 1931 ई.) में गाँधीजी के औपनिवेशिक स्वराज की माँग को अस्वीकार कर दिया गया। द्वितीय गोलमेज सम्मेलन के समय फ्रैंक मोरेस ने गाँधी के बारे में कहा ''अर्द्ध नंगे फकीर को ब्रिटिश प्रधानमंत्री से वार्ता हेतु जेम्स पैलेस की सीढ़िया चढ़ने का दृश्य अपने आप में अनोखा एवं दिव्य प्रभाव उत्पन्न करने वाला था।''

भारत वापस आकर गाँधी जी ने सविनय अवज्ञा आंदोलन पुनः शुरू किया। परन्तु पहले चरण में जो उत्साह और जोश जनता ने दिखाया, द्वितीय चरण में वह उत्साह और जोश नहीं दिखाया। अतः गाँधीजी ने 4 जनवरी 1932 को प्रारम्भ हुए अपने आंदोलन को 7 अप्रैल 1934 को स्थगित कर दिया। बेरियर ऐलविन के अनुसार ''सविनय अवज्ञा आंदोलन का समापन इस तथ्य के साथ हुआ कि भारत की जनता स्वतंत्रता पाने के लिए पूर्णतया संकल्पित है तथा दुर्भाग्यवश दमन भी प्रदर्शित किया गया। जो एक राष्ट्र के दूसरे राष्ट्र पर आधिपत्य होने का अनिवार्य परिणाम होता है।''[11]

यद्यपि यह आंदोलन अपने उद्देश्य प्राप्ति में पूर्ण रूप से सफल नहीं रहा, फिर भी राष्ट्रीय आंदोलन में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। ''इसने कांग्रेस के आंदोलन को जन आंदोलन का रूप प्रदान किया। ''इसी ने कांग्रेस के आंदोलन को संवैधानिक पद्धति से अलग करके संघर्ष के पथ पर अग्रसर किया। इसी ने सर्वप्रथम बिखरी हुई राष्ट्रीय

आशाओं को एकीकृत किया और जन संगठन और जनशाक्तिं को स्पष्ट किया। इस दृष्टिकोण से यह आंदोलन सफल माना जा सकता है।''[12]

ब्रिटिश सरकार ने 16 अगस्त 1932 को साम्प्रदायिक पंचाट की घोषणा की। इसके तहत दलित वर्ग को हिन्दू समुदाय से अलग करने की कोशिश की। दलित वर्ग को अल्पसंख्यक मानकर उनके लिए पृथक निर्वाचन की व्यवस्था की गई। महात्मा गाँधी ने इसका तीव्र विरोध किया। वह अंग्रेजों की चाल समझ गये थे। वह जान गये थे अब अंग्रेज हिन्दू समाज को भी बाँटना चाह रहे हैं। गाँधीजी ने इस साम्प्रदायिक निर्णय के विरुद्ध उपवास की घोषणा कर दी। ''उपवास की घोषणा ने जहाँ कई लोगों को विशेषकर भारतीय राष्ट्र के प्रगतिशील और बुद्धिजीवी लोगों को हैरान कर दिया, वहीं सम्पूर्ण भारत को इतना अधिक उत्तेजित कर दिया था जितना लोक स्मृति में पहले कभी नही हुआ था और कुछ ही दिनों के अन्दर 'दलित वर्ग और शेष हिन्दुओं के प्रतिनिधियों के बीच मामला सुलझा लिया गया।''[13] 26 सितम्बर 1932 को

महात्मा गाँधी और डॉ. अम्बेडकर के बीच एक समझौता हुआ, जो इतिहास में पूना समझौता के नाम से जाना जाता है। इसके तहत पृथक निर्वाचन प्रणाली को समाप्त कर दलित वर्ग के लिए सुरक्षित सीटों की संख्या 71 से बढ़ाकर 147 कर दी गई।

30 मार्च 1942 को क्रिप्स प्रस्ताव की घोषणा हुई। इस प्रस्ताव में जो बातें थी, वह भविष्य पर निर्भर थी। किसी ठोस निर्णय की बात नहीं की गई थी। इसलिए यह प्रस्ताव भारतीय जनता को संतुष्ट नहीं कर सका। महात्मा गाँधी ने इन प्रस्तावों को ''दिवालिया होने वाला बैंक का उत्तर दिनांकित चेक'' बताया।

भारत छोड़ो आन्दोलन भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन का चरम बिंदु था। महात्मा गाँधी ने कहा था ''मैं देश की बालू से ही कांग्रेस से भी बड़ा आंदोलन खड़ा कर दूँगा।''

''7 अगस्त 1942 ई. को बम्बई के ग्वालिया टैंक में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। इसकी अध्यक्षता

अबुल कलाम आजाद ने की। नेहरू ने ''भारत छोड़ो प्रस्ताव'' पेश किया, जिसको थोड़ा बहुत संशोधन के बाद 8 अगस्त 1942 ई. को स्वीकार कर लिया गया। कांग्रेस के इस ऐतिहासिक सम्मेलन में गाँधी जी ने लगभग 70 मिनट तक भाषण दिया। उन्होंने कहा कि मैं आपको एक मंत्र देता हूँ ''करो या मरो'' ।''[14]

एक छोटा सा वाक्य जो अपने अंदर असीम शाक्तिं समाहित किए हुए था। भारतीय जनता ने इस वाक्य को हृदय से आत्मसात कर लिया। 9 अगस्त 1942 को प्रातःकाल आपरेशन जीरो आवर के तहत गाँधी जी एवं कांग्रेस के महत्वपूर्ण नेता गिरफ्तार कर लिए गए। यह आंदोलन एक तरह से नेतृत्व विहीन हो गया। इस आंदोलन की बागडोर जनता ने स्वयं अपने हाथों में ले ली। भूमिगत रूप से इस आंदोलन का संचालन किया गया जैसे अरुणा आसफ अली, सुचेता कृपलानी, राम मनोहर लोहिया, बीजू पटनायक एवं जय प्रकाश नारायण आदि। उषा मेहता गुप्त रूप से रेडियो का प्रसारण कार्य करती

थीं। इस आंदोलन के दौरान बलिया, तामलुक एवं सतारा में समानांतर सरकार की स्थापना हुई।

ब्रिटिश सरकार ने आंदोलन का दमन कठोरतापूर्वक किया। भारत छोड़ो आंदोलन अपने उद्देश्य पूर्ति में सफल नहीं रहा परन्तु इसे पूरी तरह से असफल भी नहीं कह सकते क्योंकि इसने ब्रिटिश सरकार की नींव को हिला कर रख दिया था, ब्रिटिश सरकार समझ चुकी थी कि वह बहुत अधिक समय तक भारत में अब नहीं रह सकती। डॉ. ईश्वरी प्रसाद लिखते हैं ''अगस्त क्रांति अत्याचार और दमन के विरुद्ध भारतीय जनता का विद्रोह था। और इसकी तुलना फ्रांस के इतिहास में बेस्टिल के पतन या सोवियत रूस की अक्टूबर क्रांति से की जा सकती है। यह क्रांति जनता में नवीन उत्साह तथा गरिमा की सूचक थी।''[15]

महात्मा गाँधी वसुधैव कुटुम्बकम् के उपासक थे। गाँधी जी ने राष्ट्रवाद को बहुत ही शुद्ध रूप में हमारे सामने रखा। उन्होंने कहा ''मेरा लक्ष्य विश्व

मैत्री हैं। हम विश्व बन्धुत्व के लिए जीना और मरना चाहते हैं।''

''गाँधी जी के राष्ट्रवाद से एक ओर भारत के पीड़ित एवं दीन–दुखियों के उद्धार का भाव था और दूसरी ओर भारत को विश्व भ्रातृत्व का विश्व सेवा का एक प्रबल साधन बनाने की आकांक्षा। तीसरी बात यह है कि प्रारम्भ से ही अपने सिद्धांतों के साथ वे ऐसी शर्तें लगाते जा रहे थे, जिससे पाश्ंिचम के ढंग की राष्ट्रीयता का भक्षक रूप हमें न देखना पड़े। उनका खादी आंदोलन, उनका आश्रय जीवन का प्रयोग, उनके आहार–विषयक प्रयोग, उनकी अहिंसा, उनका दरिद्र नारायण का प्रेम, उनका सात्विक वृत्तियों पर जोर डालना, उनकी सरल जीवन प्रणाली सब राष्ट्रीयता को तामसिक मार्ग पर न जाने देने वाली रोके हैं।''[16]

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी आज हमारे बीच नहीं हैं। परन्तु अपने विचारों के रूप में आज भी हमारे बीच वह जीवित हैं। महात्मा गाँधी ने स्वंय कहा था कि ''गाँधी मर

सकते हैं पर गाँधीवाद नहीं।" महात्मा गाँधी ने सम्पूर्ण विश्व को सत्य एवं अहिंसा का ऐसा हथियार दिया, जिसका कोई काट नहीं है। महात्मा गाँधी ने रोजगार परक शिक्षा की बात की थी, जिसकी झलक हम नयी राष्ट्रीय शिक्षा नीति में देख सकते हैं। उन्होंने कहा था कि "यदि हम भारत को एक राष्ट्र बनाना चाहते हैं तो केवल हिन्दी ही राष्ट्र भाषा हो सकती है।"

महात्मा गाँधी ने भारत वासियों को समझाया था कि "आजादी की हिफाजत आजादी लेने से भी मुश्किल हैं।" "गाँधी जी विचार जगत के व्यक्तिगत न होकर कर्मयोगी थे, फिर भी कर्मयोगी की प्रक्रिया की साधना में उन्होंने संसार को वे अमूल्य विचार प्रदान किए जिसमें केवल व्यक्ति और समाज ही नहीं वरन् सम्पूर्ण मानव समाज का कल्याण निहित हैं।"[17]

वास्तव में गाँधी जी भारत की महान आत्मा थे, जिनके लिए वर्तमान पीढ़ी ऋणी है और भावी पीढ़ी ऋणी रहेगी।

सन्दर्भ

1 एस के पाण्डे, 'आधुनिक भारत' प्रयाग एकेडमी पाब्लिकेशन एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स प्रकाशन (2014), पृष्ठ–336

2 डॉ. जे.सी. जौहरी, 'भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन एवं भारत का संविध ान' एस.बी.पी.डी. पब्लिकेशन्स, पृष्ठ–48

3 एस.के. पाण्डे, 'आधुनिक भारत', पृष्ठ–339

4 पुखराज जैन, 'राजनीतिक विज्ञान' साहित्य भवन पब्लिकेशन्स आगरा, 2021, पृष्ठ–43

5 एस.के. पाण्डेय 'आधुनिक भारत', पृष्ठ–341

6 पुखराज जैन, 'राजनीतिक विज्ञान', पृष्ठ–47

7 डॉ. संतोष कुमार गुप्ता, 'आधुनिक भारत' प्रकाशक शारदा पुस्तक भवन, 2016, पृष्ठ–450

8 वही, 449

9 एस.के. पाण्डे, 'आधुनिक भारत', पृष्ठ–365, 366

10 See Pattabhi Sitaramayya op cit PP—444-448

11 See Zacharias Renais sant India P—271

12 एल.पी. शर्मा, 'आधुनिक भारत' प्रकाशक लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, 2011–12, पृष्ठ–585

13 डॉ. अमरेश्वर अवस्थी, डॉ. राम कुमार अवस्थी 'भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन' रिसर्च पब्लिकेशन्स 2002, पृष्ठ–405

14 एस.के. पाण्डे, 'आधुनिक भारत', पृष्ठ–376, 377

15 एस.के. पाण्डे, 'आधुनिक भारत', पृष्ठ–379

16 रामनाथ सुमन, 'गाँधीवाद की रूपरेखा', पृष्ठ–49

17 डॉ. अनुपमा सक्सेना एवं सुश्री अर्चना कुमारी ए'प्रमुख भारतीय राजनीतिक विचारक' ज्ञानदा प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006

ISBN: 978-81-951568-9-4

हिन्दी कविता में स्वाधीनता आंदोलन की अभिव्यक्ति

डॉ0 बालेन्द्र सिंह यादव

सहायक आचार्य– हिन्दी

डॉ0 अंबेडकर राजकीय स्नातकोत्तर

महाविद्यालय, ऊँचाहार–रायबरेली (उ0प्र0)

भारत को लगभग दो सदी के लंबे संघर्ष के बाद आजादी की खुशी प्राप्त हुई थी। देशभक्ति की भावना से भर कर स्वतंत्रता की खातिर अपने प्राण न्योछावर करने वाले अमर शहीदों को याद

करते हुए हम सब देशवासी हर साल 15 अगस्त को आजादी का दिन हर्षोल्लासपूर्वक मनाते हैं। स्वतंत्रता दिवस के सुअवसर पर हमारी अपार खुशी की अभिव्यक्ति बाबू गुलाबराय जी के कथन में अनुभूत की जा सकती है कि– ''15 अगस्त का शुभ दिन भारत के राजनीतिक इतिहास में सबसे अधिक महत्त्व का है। आज ही हमारी सघन कलुष–कालिमामयी दासता की लौह शृंखला टूटी थी। आज ही स्वतंत्रता के नवोज्ज्वल प्रभात के दर्शन हुए थे। आज ही दिल्ली के लाल किले पर पहली बार यूनियन जैक के स्थान पर सत्य और अहिंसा का प्रतीक तिरंगा झंडा स्वतंत्रता की हवा के झोंकों से लहराया था। आज ही हमारे नेताओं के चिरसंचित स्वप्न चरितार्थ हुए थे। आज ही युगों के पश्चात् शंख–ध्वनि के साथ जयघोष और पूर्ण स्ततंत्रता का उद्घोष हुआ था।''[1]

आने वाली 15 अगस्त 2022 को देश अपनी आजादी के 75 वर्ष पूरे करेगा और ये हमारे लिए खुशी की बात है कि हम इस वर्ष अपनी आजादी

की 75वीं वर्षगाँठ मना रहे हैं। देश भर में इस साल चतुर्दिक आजादी के उत्सव की ही दुंदुभि बज रही है। भारत सरकार द्वारा घोषित 'आजादी का अमृत महोत्सव' देशभक्ति और राष्ट्रीयता से ओतप्रोत विविध कार्यक्रमों का लगातार आयोजन कर मनाया जा रहा है। पर आजादी कहते ही हमारे मन में अनेक तरह के प्रश्न उमड़ते–घुमड़ते हैं कि क्या आजादी के बाद देश को ऐसा ही होना चाहिए था, जैसा वह है। क्या वाकई आजादी मिल जाने से हम किसी आजाद और आत्म निर्भर देश की तरह हो गए हैं जहां से हमारी सारी दैहिक, दैविक, भौतिक व्याधियां मिट चुकी हैं। क्या सिर्फ कहने, लिखने, बोलने की आजादी ही आजादी का बुनियादी अभिप्राय है और क्या आज भी सच कहने की हर शख्स को आजादी है। एक शायर का यह कहना कि 'सच बोलना है लाजिम जीना भी है जरूरी। सच बोलने की धुन में मंसूर हो न जाना।' इस दौर की सच्चाई है।

सन् सैंतालिस के पहले देश में जिस तरह की राष्ट्रीयता, राष्ट्रभक्ति व देशप्रेम का बोलबाला था

आजादी के बाद वैसी देशभक्ति का अभाव उत्तरोत्तर दिख रहा है। आजकल तो देशभक्ति के नाम पर राष्ट्रवाद और भारतमाता के केवल जयकारे ही लगते हैं। अब तो ऐसे शिक्षकों का अभाव सा हो गया है जो बच्चों में राष्ट्रभक्ति के बीज बोयें। जाहिर है ऐसे में आज के बच्चों को इस बात से प्रायः सरोकार नहीं रहता कि हमें आजादी कैसे मिली? कैसे–कैसे संघर्ष करने पड़े? गुलामी के दौर का भारत क्या था? कैसे जलियांवालां बाग में हजारों नागरिकों को मौत के घाट उतार दिया गया था? कैसे तमाम अहिंसक लोगों पर जुल्म ढाए जाते थे? कैसे आजादी के सिपाहियों को सेल्युलर जेल में बंद कर दिया जाता था? गुलामी के दौर के ऐसे खौफनाक मंजर को याद करते ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं। यह हमारी विडंबना है कि हमें आजादी विभाजन की त्रासदी के साथ खंडित होकर मिली। स्वतंत्रता आंदोलन हमारे भारतीय इतिहास का एक ऐसा दौर है जो अपने अंदर पीड़ा, कड़वाहट, दंभ, आत्मसम्मान, गर्व, गौरव तथा सबसे अधिक शहीदों

के लहू को समेटे हुए है। इसलिए आजादी के इतिहास और उसमें क्रांतिकारी सेनानियों और उनको प्रेरित करने वाले साहित्यकारों के योगदान को जानना व समझना लाजिमी है।

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का एक लंबा इतिहास है। व्यवस्थित देशव्यापी आंदोलन की बात करें तो यह 1857–1947 तक आता है। 1700 सदी के आरंभ में व्यापारियों के रूप में आये अंग्रेजों ने मुगलों के लंबे शासन के बाद भारत पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। उन्होंने सोने की चिड़िया कहे जाने वाले इस देश के प्राकृतिक –भौतिक संसाधनों को लूटना शुरू कर दिया। इतना ही नहीं उन्होंने यहां के हिंदू और मुसलमानों में उनके आपसी भाईचारे के बीच फूट डालकर धार्मिक वैमनस्य भर दिया। अंग्रेजों की कूटनीति के खिलाफ आखिरकार पराधीनता की बेड़ियों में जकड़े भारत में स्वाधीनता की चेतना जाग गई और 1857 में आजादी की लड़ाई का पहला संग्राम छिड़ गया। उस दौर में अंग्रेजों के पास तोपों से सुव्यवस्थित

सैन्य दस्ते थे और स्वतंत्रता सेनानियों के पास जो अपने देशी हथियार थे वे बहुत अच्छी कोटि के न थे। फिर भी देश को अंग्रेजों के चंगुल से छुड़ाने के लिए सेनानियों ने भरसक प्रयास किया।

1857 के इस प्रथम संग्राम में भले ही हमें सफलता न मिली हो पर यहीं से आजादी के लिए भारतीय राष्ट्रवाद का उदय हुआ जिसके तहत राष्ट्रवादियों ने तमाम स्तरों पर संघर्ष करते हुए 1947 में स्वतंत्रता के लिए संग्राम को सफल किया। 1885 ईस्वी में स्थापित कांग्रेस ने आजादी की लड़ाई में निर्णायक भूमिका निभाई। कुछ उदारवादी और कुछ अतिवादी विचारों के भारतीय बुद्धिजीवी इस संघर्ष के अगुवा बने। एक तरफ महात्मा गांधी अफ्रीका से लौट कर देश की आजादी के लिए समर्पित हो चुके थे तो दूसरी तरफ सुभाषचंद्र बोस के नेतृत्व में आजाद हिंद फौज ने मोर्चा सम्हाला हुआ था। गांधी का चरखा राष्ट्र के स्वाभिमान का प्रतीक बन गया था। अंग्रेजी वस्त्रों की होली जलाई जा रही थी। नमक सत्याग्रह व अंग्रेजों भारत छोड़ो

के नारे तेज हो रहे थे। तिलक कह रहे थे– 'स्वाधीनता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है'। डॉ. आनंद प्रकाश स्वतंत्रता के उस दौर में राष्ट्र प्रेम की दीवानगी की चर्चा निम्न पंक्तियों में करते हैंः– "यह प्रभात फेरियों का दौर था जब छोटे–छोटे जुलूसों में राष्ट्रप्रेम के दीवाने गाते और जन जागरण पैदा करते हुए चल रहे थे। आजादी के तराने हर भारतीय के मन में गूंज रहे थे।"[2]

स्वतंत्रता आंदोलन के महायज्ञ में समाज के प्रत्येक वर्ग ने अपने–अपने तरीके से अपनी भूमिका अदा की। साहित्यकार भी देश के नायकों को अपनी लेखनी से उद्दीप्त कर स्वतंत्रता के आन्दोलन में अपना भरपूर योगदान दे रहे थे। वैसे भी साहित्यकार की लेखनी प्रत्येक काल में समाज का पथप्रदर्शन करती आई है। जब–जब समाज दिग्भ्रमित और राजनीति पथभ्रष्ट होकर किंकर्तव्यविमूढ़ की अवस्था में पहुँची है तब–तब साहित्यकारों ने अपनी पवित्र लेखनी के माध्यम से समाज के मनोबल और आत्मबल को बनाए रखने

का प्रशंसनीय कार्य किया। पराधीनता के उस दौर में भी जब सर्वत्र पराभव ही पराभव दिखाई दे रहा था तब हमारे देश के लगभग हर प्रांत के, लगभग हर भाषा–भाषी क्षेत्र के महान कवियों और लेखकों ने अपने–अपने ढंग से देश के लोगों को आजादी के आंदोलन में कूदने का आवाह्न किया। साहित्यकारों ने अंग्रेजों के खिलाफ देश के क्रांतिकारियों से लेकर आम लोगों तक के अंदर अपने शब्दों से जोश भर कर राष्ट्रप्रेम का जज्बा पैदा किया। माइकेल मधुसूदन ने बंगाली में, भारतेन्दु हरिशचन्द्र ने हिन्दी में, नर्मद ने गुजराती में, चिपूलूंपणकर ने मराठी में, भारती ने तमिल में तथा अन्य अनेक साहित्यकारों ने विभिन्न भाषाओं में राष्ट्रीयता की भावना से परिपूर्ण उत्कृष्ट साहित्य का सृजन किया। इस संदर्भ में विमल कुमार साहित्यकारों के योगदान को दर्शाते हुए कहा है कि:–"साहित्यकारों के राष्ट्रप्रेम से ओतप्रोत साहित्य को पढ़कर या सुनकर हमारे देश की तत्कालीन युवा पीढ़ी के रक्त में क्रांति का उबाल आ जाता था। उनकी बाजुएं फड़कने लगती थीं और

मन राष्ट्र वेदी पर बलि होकर देश के लिए सर्वस्व न्योछावर करने की भावना से भर उठता था।"[3]

साहित्यकारों ने अपनी साहित्यिक कृतियों के ओजस्वी उद्‌गारों से भारतवासियों के हृदयों में सुधार व जागृति की उमंग उत्पन्न कर सम्पूर्ण भारतीय जनमानस को आंदोलित किया जिससे भारत विजय का स्वप्न साकार हुआ। निश्चय ही कवियों की इस महत्वपूर्ण भूमिका को भुलाया नहीं जा सकता। पर यह अत्यंत दुर्भाग्यपूर्ण है कि हमारे इतिहासकारों ने साहित्यकारों के इस योगदान को विशेष रूप से रेखांकित करने की बजाय अनदेखा ही कर दिया। ताराचंद या विपिन चन्द्र जैसे इतिहासकारों ने अमर शहीद गणेशशंकर विद्यार्थी की दंगे में हत्या की घटना का तो जिक्र किया लेकिन माखनलाल चतुर्वेदी, राहुल सांकृत्यायन, बालकृष्ण शर्मा नवीन, सुभद्रा कुमारी चौहान, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', जगदंबा प्रसाद 'हितैषी', रामबृक्ष बेनीपुरी, बनारसी प्रसाद, यशपाल, फणीश्वर रेणु आदि के जेल जाने की कथा और आजादी की लड़ाई में

उनके योगदान की चर्चा तक नहीं की है। यही कारण है कि आज बहुत सारे लोगों को नहीं मालूम कि हिन्दी की पहली कहानी 'टोकरी भर मिट्टी' लिखने वाले माधवराव सप्रे पहले व्यक्ति थे जिन पर 1905 में राजद्रोह का मुकदमा दर्ज हुआ था। यशपाल जी की तो शादी ही बरेली जेल में हुई थी जो भारतीय जेल के इतिहास में अपने किस्म की पहली घटना थी। जेल में ही रहकर उन्होंने विश्व साहित्य का अध्ययन किया था। आजादी की लड़ाई में अंग्रेजी सरकार द्वारा सैकड़ों किताबें जब्त कर ली गयी थीं और वे किताबें अब नहीं मिलती हैं। इन सभी लेखकों के संपूर्ण योगदान पर आज तक कोई मुकम्मल किताब न होने और उनकी अच्छी जीवनियों के प्रकाश में न आने से नई पीढ़ी को उनके विस्तृत योगदान के बारे में जानकारी प्राप्त नहीं हो पाती। हिंदी में जहां–तहां इन लेखकों के बारे में कुछ लिखा मिलता है और कुछ वर्षों से जब्तशुदा साहित्य के संचयन प्रकाशित होने और उनके बारे में

शोध कार्य होने से एक झांकी अब जरूर मिल जाती है।

स्वतंत्रता के इस आंदोलन में हिंदी साहित्य लेखकों ने राष्ट्र के प्रति प्रेम जगाने में प्रभूत योगदान दिया है। इस संबंध में आधुनिक खड़ी बोली हिन्दी कविता के प्रवर्तक बाबू भारतेंदु हरिश्चंद्र का नाम अग्रणी है। उन्होंने जिस आधुनिक युग का प्रारंभ किया था उसकी जड़ें स्वाधीनता आंदोलन में ही थीं। अंग्रेजों की शोषणकारी नीतियों एवं निरीह भारतीय जनता पर किये जा रहे उनके जुल्म–ओ–सितम का भारतेंदु और उनके मंडल के साहित्यकारों ने खुलकर विरोध किया। इन सबने यह बताने में तनिक भी संकोच नहीं किया कि अंग्रेजी सरकार भारत देश के प्रति नहीं अपितु अपने ब्रिटानी देश के प्रति कर्तव्यबद्ध है। उसे इस देश के लोगों के प्रति कोई सहानुभूति नहीं है वह तो इस देश के लोगों को केवल और केवल अपना दास मानती है। भारतेंदु ने अपने साहित्य से तत्कालीन युवा पीढी के भीतर ऐसा उबाल पैदा किया कि देश के

अधिकांश युवा अंग्रेजी सरकार के अन्याय, प्रतिशोध और अत्याचार के विरुद्ध उठ खड़े हुए थे। उन्होंने जनता को बताया था कि हमारे वर्तमान शासक घोर स्वार्थी हैं और उन्हें जनता के दुख–दर्द से कोई हमदर्दी नहीं है। इसलिए ऐसे स्वार्थी और कर्तव्यविमु ख शासकों के विरुद्ध आंदोलन करना देशवासियों का परम धर्म है। 'अंधेर नगरी चौपट राजा' नामक व्यंग्य के माध्यम से भारतेंदु ने तत्कालीन राजाओं की निरंकुशता, अंधेरगर्दी और उनकी मूढ़ता का सटीक वर्णन किया हैः–

'भीतर भीतर सब रस चुसै,

हंसी हंसी के तन मन धन मुसै।

जाहिर बातिन में अति तेज,

क्यों सखि साजन, न सखि अंगरेज।'

भारतेंदु ने भारत दुर्दशा का बड़ा ही मार्मिक चित्रण किया है।

उन्हें इस बात का क्षोभ था कि अंग्रेज यहां से सारी संपत्ति लूटकर विदेश ले जा रहे थे। अंग्रेजों द्वारा की जा रही लूट–खसोट का भारतेंदु ने यह कह कर विरोध किया है कि:–

'अंगरेज राज सुख साज सजे सब भारी।

पै धन विदेश चलि जात इहै अति ख्वारी।।'

भारतेंदु के अलावा उनके मंडल के साहित्यकारों ने भी स्वतंत्रता आंदोलन की धधकती हुई ज्वाला को प्रचंड रूप दिया। प्रताप नारायण मिश्र, बद्रीनारायण चौधरी, राधाकृष्ण दास, ठाकुर जगमोहन सिंह, पं. अम्बिका दत्त व्यास, बाबू रामकृष्ण वर्मा आदि ने स्वाधीनता संग्राम और सेनानियों की भूरि–भूरि प्रशंसा करते हुए तत्युगीन चेतना को पद्य और गद्य दोनों में अभिव्यक्ति दी। इन्होंने राष्ट्रीयता एवं देशप्रेम की ऐसी गंगा बहाई जिसके तीव्र वेग से जहां विदेशी हुक्मरानों की नींव हिलने लगी, वहीं नौजवानों के अंतस में अपनी पवित्र मातृभूमि के प्यार का जज्बा गहराता चला गया।

भारतेंदु युग के बाद द्विवेदी युग, छायावाद युग और प्रेमचंद युग के साहित्यकारों ने हिंदी समाज को प्रेरित और शिक्षित किया। द्विवेदी युग में महावीर प्रसाद द्विवेदी, मैथिलीशरण गुप्त, श्रीधर पाठक, माखनलाल चतुर्वेदी आदि ने अपनी लेखनी को तलवार की भाँति पैना कर आम जनता में राष्ट्रप्रेम की भावना जगाते हुए भारतीय स्वाधीनता आंदोलन का हिस्सा बनने के लिए प्रेरित किया।

महावीर प्रसाद द्विवेदी जी ने बीस वर्ष तक 'सरस्वती' पत्रिका निकाल कर हिंदी पट्टी में तर्क, विवेक और वैज्ञानिक चेतना फैलाई। सरस्वती पत्रिका ने अपने समय के अनेकों साहित्यकारों को स्थापित कर महान बनाया। माखनलाल चतुर्वेदी, रामनरेश त्रिपाठी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' और सुभद्रा कुमारी चौहान ने राष्ट्र प्रेम को ही मुखरित नहीं किया अपितु स्वतंत्रता आंदोलन में भी भाग लिया।

माखनलाल चतुर्वेदी के बारे में कहा जाता है कि वे बारह बार जेल गए थे और 69 बार उनके घर की तलाशी ली गई थी। 'पुष्प की अभिलाषा' शीर्षक से उनकी एक ऐसी रचना है जिसके जरिए उन्होंने आजादी की बलिवेदी पर शहीद हुए वीर सपूतों के प्रति अगाध श्रद्धा समर्पित करते हुए बलिदानों को सर्वोपरि बताया है। उन्होंने अपनी इस प्रसिद्ध कविता में अगली पीढ़ी को भी प्रेरणा प्रदान करते हुए फूल के माध्यम से देश के प्रति अपनी भक्ति भावना की अभिव्यक्ति की है:–

'चाह नहीं मैं सुरबाला के गहनों में गूंथा जाऊं।

चाह नहीं मैं प्रेमी माला में बिंध प्यारी को ललचाऊं।।

चाह नहीं सम्राटों के द्वार पर हे हरि! डाला जाऊं!

चाह नहीं देवों के सिर पर चढ़ूं, भाग्य पर इतराऊं

मुझे तोड़ लेना ए वन माली, उस पथ पर देना फेंक।

मातृभूमि पर शीश चढ़ाने, जिस पथ जाएं वीर अनेक।।'

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने बहुत सरल शब्दों में देश के लोगों की चेतना को झकझोरते हुए राष्ट्रीयता का प्रचार–प्रसार किया। उन्होंने अपनी रचना 'भारत–भारती' के द्वारा भारत के रणबांकुरों को स्वतंत्रता आंदोलन मंच कूदने के लिए प्रेरित किया। देशप्रेम की भावना को सर्वोपरि मानते हुए उन्होंने 'भारत–भारती' में सोई हुई भारतीयता को जगाने का कार्य किया:–

'जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है।

वह नर नहीं, नर–पशु निरा है और मृतक
समान है।'

राष्ट्रकवि सोहनलाल द्विवेदी प्रमुख गांधीवादी माने जाते हैं। उनकी अनेक रचनाओं का उपयोग स्वतंत्रता आन्दोलन की प्रभात फेरियों में किया जाता था। देश पर मर मिटने वाले वीर शहीदों के कटे सिरों के बीच अपना सिर मिलाने की तीव्र चाहत लिए वे कहते हैंः–

'हो जहां बलि शीश अगणित,
एक सिर मेरा मिला लो।'

कवयित्री सुभद्रा कुमारी चौहान ने अंग्रेजों की चूलें हिला कर रख देने वाली वीरांगना महारानी ल क्ष्मीबाई की वीरता पर आधारित 'झांसी की रानी' कविता की रचना की। वीर सैनिकों में देशप्रेम का अगाध संचार कर जोश भरने वाली ऐसी अनूठी कृति को भला कौन भूल सकता है। उसकी एक–एक पंक्ति आज भी प्रासंगिक हैः–

'सिंहासन हिल उठे, राजवंशों ने भृकुटी तानी थी,

बूढ़े भारत में भी आई, फिर से नई जवानी थी,

गुमी हुई आजादी की, कीमत सबने पहिचानी थी,

दूर फिरंगी को करने की सबने मन में ठानी थी,

चमक उठी सन् सत्तावन में वह तलवार पुरानी थी,

बुंदेले हरबोलों के मुंह हमने सुनी कहानी थी,

खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसी वाली रानी थी।'

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने अपनी कविताओं के माध्यम से 'विप्लव गान' गाकर और सक्रिय रूप से

भाग लेकर भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में महती भूमिका निभाईः—

‘कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ, जिससे उथल—पुथल मच जाए।

एक हिलोर इधर से आए, एक हिलोर उधर को जाए।।

नाश ! नाश! हां महानाश!! की प्रलयंकारी आंख खुल जाए।।‘

जगदम्बा प्रसाद मिश्र ‘‘हितैषी‘‘ की वो पंक्तियाँ आज भी बड़े गर्व से गायी जाती है जिसमें वे कहते हैंः—

‘शहीदों की चिताओं पर लगेंगे हर बरस मेले।

वतन पे मरने वालों का यही बाकी निशाँ होगा।‘

कविवर श्यामलाल गुप्त 'पार्षद' का झंडा गीत स्वतंत्रता सेनानियों के लिए शास्त्र ही बन गया थाः–

'विजयी विश्व तिरंगा प्यारा।
झंडा ऊँचा रहे हमारा।।'

कवि गोपालदास व्यास 'नीरज' की निम्न पंक्तियों से स्वतंत्रता आंदोलन में उनके योगदान की स्पष्ट झलक प्राप्त हो जाती हैः–

'मैं विद्रोही हूं जग में विद्रोह कराने आया हूं।

क्रांति का सरल सुनहरा राग सुनाने आया हूं।।'

उन्होंने अपने उन महान क्रांतिकारियों जिन्होंने देश के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया था के प्रति मानो समस्त राष्ट्र की ओर से भावपूर्ण शब्दों में श्रद्धांजलि अर्पित किया हैः–

'आजादी के चरणों में जो जयमाला चढ़ाई जाएगी।

वह सुनो, तुम्हारे शीशों के फूलों से गूंथी जाएगी।'

इतना ही नहीं उन्होंने लोगों को अत्याचार के आगे न झुकने की प्रेरणा देते हुए कहा था किः–

'देखना है जुल्म की रफ्तार बढ़ती है कहां तक।

देखना है बम की बौछार है कहां तक।।'

छायावादी युग में महाकवि जयशंकर प्रसाद 'अरुण यह मधुमय देश हमारा' कहते हुए अमर्त्य वीर पुत्रों को दृढ़ प्रतिज्ञ होकर आगे बढ़ने का आह्वान कर रहे थे। उनकी काव्य–कृतियों और चंद्रगुप्त व स्कंदगुप्त नाटकों में देशप्रेम की अनुगूँज के साथ गुलामी की कारा को तोड़ने का आह्वान भी मिलता है। उनकी निम्न पंक्तियां देशप्रेम की भावना जगाने का कार्य करती हैः–

'हिमाद्रि तुंग श्रृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती

स्वयंप्रभा समुज्जवला स्वतंत्रता पुकारती।'

सुमित्रानंदन पंत ने 'ज्योति भूमि, जय भारत देश', निराला ने 'भारती! जय विजय करे। स्वर्ग सस्य कमल धरे।', कामता प्रसाद गुप्त ने 'प्राण क्या हैं देश के लिए, देश खोकर जो जिए तो क्या जिए', तो इकबाल ने 'सारे जहां से अच्छा हिंदोस्तां हमारा' का भाव भरकर जनमानस को उद्वेलित किया।

मतलब स्पष्ट है कि अब देश के लोगों को किसी भी कीमत पर पराधीनता स्वीकार नहीं थी और स्वाधीनता की लड़ाई लड़ रहे वीर सैनिक ही नहीं वफादार प्राणी भी 'पराधीन सपनेहुं सुख नाहीं' का मर्म जान चुके थे। बंकिम चंद्र चटर्जी का 'वंदे मातरम' गीत देशप्रेम से ओत–प्रोत आजादी के ला खों परवानों को हंसते–हंसते देश की खातिर फांसी के फंदे पर झूलने के लिए लगातार प्रेरित कर रहा था। 'वंदेमातरम' हमारा राष्ट्रीय गीत है और आज भी यह हमें श्रद्धा, भक्ति व स्वाभिमान की प्रेरणा देता है।

कवियों के अतिरिक्त तत्कालीन गद्य लेखकों ने भी मृतप्रायः लोगों में प्राण फूंकने का कार्य किया। कलम के सिपाही प्रसिद्ध कथाकार मुंशी प्रेमचंद्र ने अपनी तीन सौ से अधिक कहानियों और 'रंगभूमि', 'कर्मभूमि' आदि उपन्यासों के माध्यम से जहां एक ओर भारत के सामंतवाद और ब्रिटिश नौकरशाही की आलोचना की तो वहीं दूसरी ओर गुलामी व ब्रिटिश शोषण के अनेक रुपों को उजागर किया। उनके साहित्य ने अफसरशाही के बोझ तले दबी व शोषित जनता में कर्तव्य–बोध का ऐसा बीज अंकुरित किया कि वो क्रूर तानाशाही के खिलाफ आंदोलित हो गयी। मुंशी प्रेमचन्द के साहित्य की प्रेरणा से देशवासियों के मन में अपने ऊपर हो रहे अत्याचारों के खिलाफ बोलने की हिम्मत आई जिससे वे आजादी के आंदोलन के भागीदार बने।

अंग्रेज सरकार को प्रेमचंद का प्रेरक साहित्य काँटे की तरह चुभने लगा। गुप्तचर विभाग की सहायता से अंग्रेजों ने मुंशी प्रेमचंद को उनकी रचना 'सोजे वतन' के लिए तलब कर नवाब राय की

स्वीकृति पर उन्हें डराया–धमकाया और ‘सोजे वतन’ की प्रतियां जलवा दी। परन्तु प्रेमचंद की लेखनी अपेक्षाकृत अधिक प्रखर होकर अंग्रेजों की दमनकारी नीति से प्रभावित हुए बिना स्वतंत्रता आंदोलन में विस्फोटक का काम करती रही। राकेश कुमार आर्य ने प्रेमचंद की प्रसांगिकता को दर्शाते हुए सही लिखा है कि:– ‘‘प्रेमचंद हमारे स्वतंत्रता आंदोलन में साहित्यकारों की ओर से वह हस्ताक्षर हैं जिन पर हम सबको गर्व और गौरव की अनुभूति होती है। उन्होंने अपने अधिकारों के प्रति उदासीन लोगों को जगाने और क्रूर तानाशाही के विरुद्ध उठ खड़े होने का सफल आवाहन किया।’’[4]

आजादी मिलते ही देश विभाजन की त्रासदी से लहूलुहान हो गया था। विभाजन के दंश आजादी के काफी दिनों बाद तक कचोटते रहे हैं। देश में धार्मिक कट्टरता दिनोंदिन बढ़ती गई। 1948 में महात्मा गांधी की हत्या की वजह भी धार्मिक कट्टरता ही रही। कुछ लोग हिन्दी साहित्य पर यह आरोप लगाते हैं कि विभाजन से उपजे दर्द की अभिव्यक्ति

कथा साहित्य की अपेक्षा कविताओं में कम ही दिखाई पड़ती है। हाँ अज्ञेय ने जरूर शरणार्थी सीरीज में दस–ग्यारह कविताएँ विभाजन पर लिखी हैं जिनमें 'पक गई खेती' शीर्षक कविता ध्यानाकर्षित करती है:–

'वैर की प्रणालियों से हँस हँस के,

हमने जो सींची राजनीति की रेती।

ख़ाक मिट्टी कह के कल ही जिसमें थूका था हमने

घृणा की आज उसमें पक गई खेती।।

उसमें बह रही खूँ की नदियाँ हैं।

फसल काटने को अगली सदियाँ हैं।।'

ऐसा लगता है कि हिन्दी कवियों की नजर विभाजन की त्रासदी पर कम आजाद भारत की बागडोर संभालने वाले नेताओं पर अधिक थी। वे उनके द्वारा बनाये जा रहे स्वतंत्र भारत की उस

तस्वीर को देख रहे थे जिसमें गाँधीवादी राजनीति के बहाने लोग अपनी राजनीति चमकाने में लगे थे। बाबा नागार्जुन इन राजनेताओं पर व्यंग्य करते हुए लिखते हैंः–

> 'बापू के भी ताऊ निकले तीनों बन्दर बापू के।
>
> सरल सूत्र उलझाऊ निकले तीनों बन्दर बापू के।।'

भीष्म साहनी का 'तमस', यशपाल का 'झूठा–सच', राही मासूम रजा के 'आधा गांव' और कृष्णा सोबती की विभाजन विषयक कहानियां जिसने भी पढ़ी वे जानते हैं कि विभाजन के दर्द से हम आज तक नहीं उबर पाए हैं। आजादी के बाद की इन औपन्यासिक रचनाओं में विभाजन के दंश को मार्मिक ढंग से उसी रूप में उकेरा गया है जिस रूप में वह जख्म बन कर फैला और जहर बन गया था।

स्वतंत्रता के बाद देश के नव निर्माण की दिशा में बनने को तो अनेक पंचवर्षीय योजनाएं बनीं। बड़े–बड़े बांध बने, बड़े उद्योगों की नींव पड़ी। रोटी, कपड़ा और मकान सबको मिले यह संकल्प लिए गए। पर आज देखें तो आज भी सबको रोजी–रोटी और कपड़ा सम्मानजनक ढंग से मुहैया नहीं हो रहा। आजादी के बाद नेताओं व लेखकों का सपना था कि अपना देश होगा, अपना शासन होगा, अपनी भाषा होगी, देश हर मामले में तरक्की करेगा पर आजादी के एक दशक के भीतर ही जनता ठगी हुई महसूस करने लगी थी। साहित्य में आजादी मिलने के थोड़े ही दिनों बाद आजादी का मोहभंग लेखकों के मन में जन्म लेने लगा।

हिंदी उपन्यासकार श्रीलाल शुक्ल का उपन्यास 'रागदरबारी' आजादी के बाद की कारगुजारियों का कथा रिपोर्ताज है जिसमें आजादी के दो दशकों बाद के 'गांवों के बदलते परिदृश्य' का कच्चा चिट्ठा खोला गया है। उपन्यासकार लिखते हैं कि ''यह उपन्यास भारतीय जीवन में आई

मूल्यहीनता और शासन के स्तंभों के ढहते जाने का श्वेतपत्र है। गांवों की राजनीति का जो स्वरूप यहां प्रस्तुत हुआ है वह आज के राष्ट्रव्यापी और मुख्यतः मध्यम और उच्च वर्गों के भ्रष्टाचार और तिकड़म को देखते हुए बहुत अदना जान पड़ता है।''[5]

स्वतंत्रता के बाद लगभग दो दशक तक कई काव्यधाराएँ समानांतर रूप से एक समय में सक्रिय रहीं। तीन तरह के कवियों की सक्रियता देखने को मिलती हैः–

एक उत्तर छायावाद काल के बच्चन–दिनकर आदि

दूसरे प्रगतिशील कवि नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन आदि।

तीसरे प्रयोगवाद और नई कविता के कवि अज्ञेय एवं मुक्तिबोध आदि।

कवि रामधारी सिंह दिनकर भी कहां खामोश रहने वाले थे। मातृभूमि के लिए हंसते–हंसते

प्राणोत्सर्ग करने वाले बहादुर वीरों व रणबांकुरों की शान में उन्होंने कहाः–

‘कमल आज उनकी जय बोल

जला अस्थियां बारी–बारी

छिटकाई जिसने चिंगारी

जो चढ़ गए पुण्य–वेदी पर

लिए बिना गर्दन का मोल

कलम आज उनकी जय बोल।’

उनकी ‘उर्वशी’ ने अपने प्रकाशन के साथ जबरदस्त लोकप्रियता हासिल की। ‘उर्वशी अपने समय का सूर्य हूँ मैं’ वाली काव्य पंक्तियाँ तो पाठकों के मन में अब तक गूँज रही हैः–

‘मर्त्य मानव की विजय का तूर्य हूँ मैं,

उर्वशी! अपने समय का सूर्य हूँ मैं

अंध तम के भाल पर पावक जलाता हूँ,

बादलों के सीस पर स्यंदन चलाता हूँ। '

नागार्जुन भी अपनी नई विषय वस्तु और भाषा विन्यास के साथ हिन्दी कविता करते हुए गँवई किसान–मजदूर के योगदान को भी अहमियत देते हैंः–

'नए गगन में नया सूर्य जो चमक रहा है,

यह विशाल भूखंड आज जो दमक रहा है,

मेरी भी आभा है उसमें।'

नई कविता आंदोलन के साथ सामान्य मनुष्य और उसका दुःख दर्द हिन्दी कविता के केंद्र में आया। अज्ञेय, मुक्तिबोध, शमशेर बहादुर सिंह, धर्मवीर भारती, रघुवीर सहाय, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना आदि दर्जनों कवियों ने व्यंग्य, विडंबना, तनाव आदि नई कविता के प्रतिमानों के साथ हिन्दी कविता को

वैश्विक ऊँचाई तक ले जाने की सफल कोशिश की। गिरिजा कुमार माथुर ने लिखा थाः–

'आज जीत की रात पहरुए सावधान रहना।'

अज्ञेय अपनी कविता 'कवि मन' में इस चिंता के साथ याद आते हैंः–

'मिला बहुत कुछ : सब बेपेंदी का।

शिक्षा मिली,

उसकी नींव भाषा नहीं मिली।

आजादी मिली,

उसकी नींव आत्म गौरव नहीं मिली।

राष्ट्रीयता मिली,

उसकी नींव अपनी ऐतिहासिक पहचान नहीं मिली।'

मुक्तिबोध की कविता ‘अंधेरे में’ एकध्रुवीकृत होते विश्व’ के आयाम में विलीन आजाद भारत पर एक सवालिया निशान है जिसमें उन्होंने ‘सब चुप साहित्यिक चुप’ के साथ चुप्पी साधे मूकदर्शक बने समाज पर गहरी चोट की थी। इस कविता में पूंजीवाद की चरम विकृतियां और मूल्यों के पतन की ओर अग्रसर व्यक्ति का पूरा अधोपतन दिखाई देता है।

रघुवीर सहाय लोकतांत्रिक व्यवस्था में आस्था रखने वाले एक सचेत कवि थे किन्तु उन्होंने उस आजादी की आलोचना की जिसमें राष्ट्रगीत गाने वाले व्यक्ति की औकात कुछ भी नहीं हैः–

‘राष्ट्रगान में भला कौन वह
भारत–भाग्य–विधाता है।

फटा सुथन्ना पहने जिसका
गुन हरचरना गाता है

————————————————————

कौन–कौन है वह
जन–गण–मन–अधिनायक वह महाबली

डरा हुआ मन बेमन जिसका,
बाजा रोज बजाता है।'

इसके बाद इनकी अगली पीढ़ी के कवियों में साठोत्तर कवियों का अधिकांश वर्ग आजादी की फलश्रुति से संतुष्ट नहीं था। चाहे वह धूमिल हों, राजकमल चौधरी हों, रघुवीर सहाय, सर्वेश्वर, आलोक धन्वा हों, ज्ञानेंद्रपति या गोरख पांडे, सबका मोहभंग आजादी के बाद के परिदृश्य से हुआ। हिन्दी पाठकों के बीच सहज ही अपनी जगह बनाते हुए इन कवियों ने जनतंत्र पर तरह तरह के सवाल किये। उन्होंने नई काव्य शैली के साथ ऐसी कविता की कि नई कविता का नयापन फीका पड़ गया। आजादी का लाभ उठाने वाली नई पीढ़ी की उदासीनता को देख क्षोभ से धूमिल ने सवाल दागा था:–

'आजादी क्या तीन थके हुए रंगों का नाम है,

जिसे एक पहिया ढोता है।

या इसका कोई और मतलब होता है।।'

धूमिल अपनी कविताओं में आजादी के बाद के भारत का असली चेहरा दिखलाते हुए वे लिखते हैं:—

'एक आदमी रोटी बेलता है,

दूसरा आदमी रोटी खाता है,

तीसरा आदमी है जो न रोटी बेलता है और न ही रोटी खाता है।

बल्कि वो रोटी से खेलता है।

मैं पूँछता हूँ यह तीसरा आदमी कौन है?

मेरे देश की संसद मौन है।'

दुष्यंत कुमार इस पीड़ा से उद्विग्न होकर कह रहे थे:—

'यहां तक आते–आते सूख जाती हैं
कई नदियां,

हमें मालूम है पानी कहां ठहरा हुआ होगा।'

गोरख पांडे ने आजादी के बाद चलाए गए कथित समाजवाद पर चुटकी लेते हुए लिखा थाः– 'समाजवाद बबुआ धीरे धीरे आई।'

कवि अरुण कमल हिंदी की आधुनिक पीढ़ी के तेजस्वी कवियों में से हैं। उनकी कविताओं में नए प्रगतिशील सामाजिक–राजनैतिक मूल्यों के साथ नई ताजगी देता आत्मीय संसार भी थाः–

'अपना क्या है इस जीवन में,
सब तो लिया उधार।

सारा लोहा उन लोगों का,
अपनी केवल धार।।'

अरुण कमल आजादी के बाद के प्रजातंत्र की एक तस्वीर अपने ही अंदाज में खींचते हैंः–

'प्रजातंत्र का महामहोत्सव,
छप्पन विधि पकवान।

जिसके मुंह में कौर मांस का,
उसको मगही पान।'

चंद्रकांत देवताले लिख रहे थे कि:—

'प्रजातंत्र की रथयात्रा निकल रही है,

औरतों और बच्चों को रौंदा जा रहा है,

गुंडों ओर नोटों की ताकत से।

हतप्रभ लोग खामोश खड़े हैं।'

निष्कर्षतः आजादी के इतने वर्षों बाद भी भीख मांग कर गुजारा करने वालों और भूखे सोने वालों की संख्या कम नहीं है। कोरोना जैसी वैश्विक महामारी ने तो वर्तमान में देश की आधारभूत जीवन सुविधाओं की नंगी सचाई उजागर कर दी है। लोगों ने बड़े पैमाने पर यहां से वहां दर—ब—दर होकर अपनी नौकरियां और जान गंवाई। इस प्रजातांत्रिक

देश में प्रजातंत्र तो जैसे अपनी सुंदर पारिभाषिकी के साथ केवल बातों और हमारे पाठ्यक्रमों का हिस्सा बन कर रह गया है। आम आदमी अपनी बुनियादी जीवन सुविधाएं बामुश्किल हासिल कर पा रहा है। देश के किसान को अपनी उपज पर एमएसपी तय करने की आजादी नहीं है इसे भी कारपोरेट और उद्योगपतियों के हिसाब से सरकार तय करती है। असली आजादी तो इन्हीं उद्योगपतियों को है जो चुनावी चंदे देकर सरकार का मुंह बंद रखते हैं और जब चाहें तब वे अपने उत्पाद का दाम बढ़ा सकते हैं। आज देश की जो परिस्थितियां बनी हुई है उनमें भी सर्वत्र एक आवाह्न है एक चुनौती है। ओम निश्चल ने ठीक ही लिखा है कि– ‘‘आजादी को लेकर जो स्वप्न लेखकों, कवियों ने देखे हैं वे तमाम तरक्की के बावजूद शतप्रतिशत प्रतिफलित होते हुए नहीं दिखते। तमाम चौनलों के माध्यम से हमारी सोच को परिचालित एवं परिवर्तित कर हमारे स्वविवेक पर प्रायोजित विवेक का आच्छादन किया जा रहा है। इसलिए आजादी का जैसा प्रतिफलन

समाज में और जीवन के विभिन्न हलके में जिस तरह होना चाहिए था, वह प्रतिबिम्बित होता हुआ नहीं दिखता।''

कहने का अभिप्राय यह है कि राष्ट्र जागरण, राष्ट्रोद्धार और राष्ट्रोत्थान ही कवियों की लेखनी का एकमात्र व्रत है, एकमात्र विकल्प है। आज के हमारे कवियों और साहित्यकारों का यह महती दायित्व बनता है कि वे इस देश के बारे में सोचें और उसी परंपरा को जीवित रखें, जो मैथिलीशरण गुप्त की परंपरा है, प्रेमचंद की परंपरा है, नीरज की परंपरा है। आज के समय में भी वैसी ही धारदार रचनाओं की जरूरत है, जो जन–जन को आंदोलित कर सके, उनमें जागृति ला सके। भ्रष्टाचार व अराजकता को दूर कर हर हृदय में भारतीय गौरव–बोध एवं मानवीय–मूल्यों का संचार कर सके। प्रेमचंद की रंगभूमि, कर्मभूमि (उपन्यास), भारतेंदु हरिश्चंद्र का भारत–दर्शन (नाटक), जयशंकर प्रसाद का चंद्रगुप्त, स्कंदगुप्त (नाटक) आज भी उठाकर पढ़िए, देशप्रेम की भावना जगाने के लिए बड़े

कारगर सिद्ध होंगे। वीर सावरकर की '1857 का प्रथम स्वाधीनता संग्राम' हो या पंडित नेहरू की 'भारत एक खोज' या फिर लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक की 'गीता रहस्य' या शरद बाबू का उपन्यास 'पथ के दावेदार' – जिसने भी इन्हें पढ़ा, उसे घर–परिवार की चिंता छोड़ देश की खातिर अपना सर्वस्व अर्पण करने के लिए स्वतंत्रता के महासमर में कूदते देर नहीं लगी। आजादी के अमृत महोत्सव में 75 साल बाद भी स्वतंत्रता सेनानियों की गौरव गाथा हमें यह प्रेरणा प्रदान करती है कि हम स्वतंत्रता के मूल्य को बनाए रखने के लिए कृत संकल्पित रहें।

संदर्भ

1 बाबू गुलाब राय– स्वाधीनता आंदोलन और हिन्दी निबंध।

2 डॉ. आनंद प्रकाश– स्वतंत्रता संग्राम और हिन्दी।

3 विमल कुमार– जंग– ए– आजादी में कलमकारों की कहानी।

4 राकेश कुमार आर्य– स्वतंत्रता आंदोलन में हमारे साहित्यकारों

का योगदान।

5 ओम निश्चल– स्वतंत्र भारत एवं समकालीन साहित्यकारों के स्वप्न।

6 ओम निश्चल– स्वतंत्र भारत एवं समकालीन साहित्यकारों के स्वप्न।

ISBN: 978-81-951568-9-4

आजादी में प्रेस की भूमिका

विकास

सहायक प्रोफेसर – अर्थशास्त्र

डॉ अम्बेडकर राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय

ऊँचाहार–रायबरेली।

आजादी में प्रेस की भूमिका के महत्व के कम नहीं किया जा सकता है। अखबारों का असर केवल पढ़े–लिखे लोगों के बीच ही नहीं था बल्कि इनकी पहुँच दूर–दराज के गाँवो तक थी। गाँवों में केवल एक या दो लोग ही शिक्षित होते थे। लेकिन समाचार पत्र पढ़कर वह उसकी चर्चा अनेक लोगों से करते थे । इस प्रकार स्वतन्त्रता आन्दोलन

और अंग्रेजों की नीतियों की जानकारी आम जनमानस को हो जाती थी। चूँकि उस समय भारतीय जनता के पास न कोई संगठन था और न ही कोई संगठित राजनीतिक कार्यक्रम था। इसलिए प्रेस ही उस समय तक ऐसा हथियार था जिसके जरिये जनता को राजनीतिक रुप से शिक्षित – प्रशिक्षित किया जा सकता था। इस प्रकार प्रेस के माध्यम से एक राष्ट्रीय विचार धारा का बीज बोया गया। जिसमें भारतीय समाचार प्रत्रों को बहुत सफलता मिली।

1870 से 1918 तक का समय ऐसा था जब चेतना और जागरुकता की लहर तो फैलनी शुरु हो गयी थी लेकिन सामूहिक भागीदारी वाले राष्ट्रीय आन्दोलन का स्वरुप पूरी तरह नहीं बन सका था। लोगों को आजादी से सम्बन्धित सवालों और मुद्दों से जोड़ने के लिए उस समय न तो सभायें होती थीं और न ही कोई राजनीतिक कार्यक्रम सामने था जिसमें जनता की भागीदारी हो सके और जिसे एक आन्दोलन के रुप में प्रस्तुत किया जा सके। उस

समय सबसे पहला राजनीतिक कार्यक्रम यही था कि जनता में राजनीतिक चेतना का प्रचार –प्रसार किया जाये और लोगों को उनके अधिकारों के लिए शिक्षित किया जाये। इस तरह लोगों में प्रेस के माध्यम से एक राष्ट्रीय विचारधारा का प्रचार–प्रसार किया जाये।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिकांश कामकाज उस समय प्रेस पर ही निर्भर थे। कांग्रेस के प्रस्तावों और कार्रवाइयों की सूचना लोगों के बीच समाचार पत्र ही पहुँचाते थे। राष्ट्रीय आन्दोलन की बुनियाद रखने में प्रेस और पत्रकारों की जितनी महत्वपूर्ण भूमिका थी इसका अनुमान इसी तथ्य से लगाया जा सकता है कि 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना जिन लोगों ने की थी उनमें करीब एक–तिहाई पत्रकार थे। ब्रिटिश शासन के विरोध में स्वतन्त्रता आन्दोलन के संघर्ष की शुरुआत कई निडर अखबारों ने की। जी सुब्रहमण्यम अय्यर के संपादन में 'द हिन्दू' और 'स्वदेशमित्रम', बाल गंगाधर तिलक के संपादन में 'केसरी' और 'मराठा,'

सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के संपादन में 'बंगाली'', शिशिर कुमार और मोतीलाल घोष के सम्पादन में 'अमृतबाजार पत्रिका', गोपालकृष्ण गोखले के संपादन में 'सुधारक', एन.एन. सेन के संपादन में 'इडियन मिरर', दादाभाई नौरोजी के संपादन में 'हिन्दुस्तानी' और 'एडवोकेट आफ इण्डिया' जैसे समाचार पत्र अस्तित्व में आये।

समाचार पत्र छापना उस समय व्यवसाय नहीं था और न ही कोई आर्थिक मुनाफा कमाया जाता था। पत्रकारिता उस समय पेशा नहीं था। लोग देश या समाज सेवा के लिए पत्रकारिता करते थे और अपनी आर्थिक स्थिति के अनुसार चंदा देते थे। समाचार पत्रों में छपे शब्दों को लोग बहुत ध्यान से पढ़ते या किसी से पढ़वाकर सुनते और फिर उस पर चर्चा करते थे। इस तरह प्रेस ने उस समय लोगों को सिर्फ राजनीतिक रुप से शिक्षित ही नहीं किया बल्कि उन्हें सामूहिक भागीदारी भी सिखाई।

प्रेस के माध्यम से सभी बड़े राजनीतिक मुद्दों और विवादों को उठाया जाता था। सामान्यतया सभी सरकारी नीतियों और कानूनों का जमकर विरोध किया जाता था। लेकिन प्रेस का यह काम आसान न था क्योंकि अंग्रेजी सरकार ने उन पर अंकुश लगाने के लिए भारतीय दण्ड संहिता में धारा 124–ए को जोड़ा। किन्तु भारतीय पत्रकारों ने इससे बचने का तरीका खोज निकाला । भारतीय पत्रकार साम्प्रज्यवादी शोषण के खिलाफ जब कुछ लिखते तो उसके प्रमाण में ब्रिटिश सुधारवादी सोच के नागरिकों की चिट्ठियाँ अखबारों में छाप देते थे। इस प्रकार ब्रिटिश सरकार भारतीय पत्रकारों के खिलाफ कोई कार्रवायी नहीं कर सकती थी क्योंकि अगर ऐसा किया जाता तो ब्रिटिश नागारिकों या ब्रिटिश अखबारों को भी प्रतिवादी बनाना पड़ता। भारतीय पत्रकार कभी–कभी ब्रिटिश अफसरशाही को तंग भी किया करते थे। वह किसी ब्रिटिश अखबार की साम्प्रज्य विरोधी बातें अपने समाचार पत्र में छाप देते लेकिन साथ में यह उल्लेख नहीं करते थे

कि यह अंश उन्होने किसी ब्रिटिश समाचार पत्र से लिया है। जब ब्रिटिश अफसर इन मामलों में कार्रवाई शुरु कर देते थे लेकिन बाद में पता चलता कि यह अंश तो अमुक ब्रिटिश समाचार पत्र से लिया गया है तो वे बेचारे कुढ़कर रह जाते थे।

कभी–कभी भारतीय प्रेस ब्रिटिश सरकार के हितैषी होने का दिखावा करते रहते और सतर्क रहने की आड़ में अंग्रेजी सरकार के खिलाफ कुछ न कुछ लिख दिया करते थे। बाल गंगाधर तिलक और मोतीलाल घोष ने यह तरीका खूब इस्तेमाल किया। लेकिन राष्ट्रवादी पत्रकारों को भारतीय भाषा में लिखना बहुत कठिन काम था। उन्हें इस तरह लिखना पड़ता था कि वे अंग्रेजी कानूनों की पकड़ में न आ सके साथ ही अर्द्ध–शिक्षित पाठक लोग उनकी लिखी हुयी बातों को समझ सकें। राष्ट्रवादी पत्रकारों ने यह काम बहुत जिम्मेदारी से किया। 1878 का वार्नाकुलर प्रेस एक्ट भारतीय भाषा के समाचार पत्रों में अंकुष लगाने के लिए लागू किया गया। यह कानून मुख्य रुप से 'अमृत बाजार

पत्रिका' के लिए बनाया गया था जो उस समय अँग्रेजी और बँग्ला दोनों भाषाओं में छपता था लेकिन अंग्रेज अफसर हैरान रह गये जब 'अमृत बाजार पत्रिका' के सम्पादकों ने इसे रातों रात सिर्फ अंग्रेजी समाचार पत्र में बदल दिया ।

आजादी की लड़ाई में प्रेस की आजादी के लिए सबसे ज्यादा संघर्ष बाल गंगाधर तिलक ने किया। जी0 जी0 अगारगर के साथ 1881 में मराठी भाषा में 'केसरी' और अंग्रेजी भाषा में 'मराठा' नाम से दो अखबारों का प्रकाशन शुरु किया। 1888 में अपने संपादन में इन समाचार पत्रों के माध्यम से अँग्रेजी शासन के विरोध में जनता में जागरुकता पैदा करना शुरु किया। बाल गंगाधर तिलक ने लोगों में राष्ट्रीयता की भावना का प्रचार–प्रसार करने के लिए 'गणपति महोत्सव' को माध्यम बनाया। 1857 में जब पूना में प्लेग फैल गया तब तिलक ने प्लेग से निपटने में सरकारी कोशिशों का समर्थन किया लेकिन प्लेग पीड़ितों के प्रति सरकारी अधिकारियों के बेरहम और हृदयहीन रवैये की कटु आलोचना

की। तिलक की पहचान लोगों में एक राष्ट्रवादी नेता के रुप में होने लगी। उनकी बातों का असर लोगों पर खूब होता था। इस प्रकार तिलक ने प्रेस के माध्यम से महाराष्ट्र में एक जन आन्दोलन तैयार कर दिया था। तिलक को रोकने के लिए ब्रिटिश सरकार अनेक तरीके अपनाती रही। अन्ततः भारतीय दण्ड संहिता की धारा 124–ए के अन्तर्गत उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और उन्हें 18 महीने की कड़ी सजा दी गयी। इनकी सजा का देश भर में विरोध हुआ। लोगों ने उन्हें 'लोकमान्य' की उपाधि दी। तिलक ने अपने ऊपर लगे अभियोगों का खण्डन किया था जबकि उनके राजनीतिक उत्तराधिकारी गाँधी जी ने अपने खिलाफ लगे अभियोगों को स्वीकार किया था। इस प्रकार राष्ट्रीय आन्दोलन को गति देने में तिलक की पत्रकारिता के योगदान को भुलाया नहीं जा सकता है।

देश को आजाद कराने में जो भूमिका समाचार पत्रों की रही वह स्वतन्त्रता संग्रम सेनानियों की तरह थी। देश के लोगों को जाग्रत करने के

लिया समाचार पत्रों का प्रकाशन होता था। देश की आजादी में वीर शहीदों के समान पत्रकारों ने भी अपनी भूमिका अदा की। जब–जब ब्रिटिश सरकार ने राष्ट्रीय आन्दोलन पर हमला किया या उसे दबाने की कोशिश की तब–तब प्रेस ने राष्ट्रीय आन्दोलन को और गति प्रदान की। उस समय प्रेस की आजादी देश की आजादी की लड़ाई का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बन गयी थी। अनके पत्र–पत्रिकाओं ने स्वतन्त्रता आन्दोलन के लिए जनता को तैयार किया जिससे आजादी का आन्दोलन एक जन आन्दोलन बन गया और आजादी दिलाने में सहायक सिद्ध हुआ ।

संदर्भ

1 आधुनिक भारत – एस0 के0 पाण्डे (प्रयाग एकेडमी – इलाहाबाद)

2 भारत में स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास – डॉ पुखराज जैन (साहित्य भवन – आगरा)

3 भारत का स्वतन्त्रता संघर्ष – बिपिन चन्द्र (हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय)

ISBN: 978-81-951568-9-4

भारतीय वैज्ञानिकों का देश की स्वतंत्रता में योगदान

डॉ0 विमलेश कुमार सिंह' तथा डॉ0 विनोद सिंह यादव

'असिस्टेंट प्रोफेसर, रसायन विज्ञान विभाग, असिस्टेंट प्रोफेसर, जंतु विज्ञान विभाग,

डॉ0 अम्बेडकर राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय ऊंचाहार रायबरेली

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में देश के विभिन्न वैज्ञानिकों ने विज्ञान के क्षेत्र में कार्य करते हुए ना सिर्फ वैज्ञानिक दृष्टिकोण को विकसित

किया बल्कि देश के युवाओं के प्रेरणा स्रोत रहे और देश की आत्मनिर्भरता राष्ट्र गौरव और देश प्रेम को बढ़ावा दिया। महान भारतीय वैज्ञानिकों जैसे सर सी0 वी0 रमन, आचार्य पी0 सी0 राय जगदीश चंद्र बोस, बीरबल साहनी, होमी जहांगीर भाभा आदि ने अपने स्तर से महत्वपूर्ण भूमिका निभाई तथा स्वतंत्रता आंदोलन को सफल बनाने में योगदान दिया।

भारत के स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान हुए संघर्ष और चुनौतियों में कई गुमनाम वैज्ञानिक और विज्ञान संचारक भी शामिल थे। उन्हें ब्रिटिश सरकार द्वारा भेदभाव और उपेक्षा का सामना करना पड़ा। उन तमाम विपरीत परिस्थितियों के बावजूद, हमारे वैज्ञानिक तथा विज्ञान संचारक राष्ट्र और समाज के भले के लिए विज्ञान के इस्तेमाल के साथ–साथ विज्ञान संचार का भी काम करते रहे। इसलिए हमें केवल उन स्वतंत्रता सेनानियों तक ही सीमित नहीं रहना चाहिए, जिन्होंने आजादी के लिए अपने प्राणों की आहुति दी, बल्कि हमें उन महान

वैज्ञानिकों के विषय में जानकारी की जरूरत है, जो अनेक कठिनाइयों के बावजूद भी अपनी अदम्य वैज्ञानिक विचारधारा के लिए डटकर खड़े रहे। अंग्रेज़, विज्ञान और तकनीक के महत्व से पूरी तरह से परिचित थे, इसलिए प्लासी के युद्ध के मात्र दस साल बाद 1767 में रॉबर्ट क्लाइव ने सर्वे ऑफ इंडिया की नींव रखी। अंग्रेज़ यह अच्छी तरह से जानते थे कि बिना विज्ञान और प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल किए वे इस भारत की सांस्कृतिक व भौगोलिक विरासत को नहीं समझ पाएंगे। इस संगठन के जरिए उन्हें अपने साम्राज्य के विस्तार के साथ–साथ इस देश के भौगोलिक बनावट को जानने में काफी मदद मिली। अंग्रेज़ यह भली भांति समझ गए थे कि अगर भारतीय लोगों को आधुनिक विज्ञान और तकनीकी विकास से दूर रखते हैं तो वे बेहद कुशलतापूर्वक इस देश पर शासन कर सकेंगे। हालांकि हमारे वैज्ञानिकों ने अपने आत्मविश्वास, स्वाभिमान और देश प्रेम की भावना के साथ अंग्रेजों

के भेदभावपूर्ण नीति के खिलाफ अपना संघर्ष जारी रखा।

आजादी की लड़ाई में भारतीयों ने सिर्फ बंदूक से ही नहीं कलम से भी संघर्ष किया था। देश के हर वर्ग से जुड़े लोग आजादी को हासिल करने के लिए प्रयासरत थे। स्वतंत्रता के संघर्ष में मजदूर, किसान, छात्र, नेता, शिक्षक और जवान तो शामिल थे ही लेकिन उस समय के वैज्ञानिकों के मन में भी आजादी की लौ सुलग रही थी। इनमें से कई ने अंग्रेजों को झुकने पर मजबूर किया तो कई ने देश सेवा के अप्रतिम उदाहरण पेश किए थे। हम सभी जानते हैं कि भारत में आधुनिक विज्ञान के विकास का श्रेय उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भिक दशकों में शुरू हुई अंग्रेजी शिक्षा को जाता है, परन्तु हमारी पीढ़ियों को हमारे वैज्ञानिकों के विषय में बहुत अधिक जानकारी नहीं है, जबकि इनके योगदान और उनकी कहानियां काफी प्रेरणादायक हैं।

सर चंद्रशेखर वेंकटमरमन (सर सी0 वी0 रमन) भारत के महान भौतिक विज्ञानी थे। प्रकाश के प्रकीर्णन पर उत्कृष्ट कार्य के लिये वर्ष 1930 में उन्हें भौतिकी का प्रतिष्ठित नोबेल पुरस्कार दिया गया। उनका आविष्कार उनके ही नाम पर "रमन प्रभाव" के नाम से जाना जाता है। 1954 में उन्हें भारत सरकार द्वारा भारत रत्न की उपाधि से विभूषित किया गया तथा 1957 में लेनिन शान्ति पुरस्कार प्रदान किया था। सदियों तक विदेशी शक्तियों द्वारा शासन किए जाने के बाद इस अन्तर्राष्ट्रीय गौरव से भारतीय वैज्ञानिक समाज का आत्म—सम्मान बुलन्द हुआ। एक भारतीय वैज्ञानिक को, जिसने सारा अनुसंधान भारत में ही रहकर किया हो, उसे दुनिया का सबसे बड़ा सम्मान मिलना सच में बेहद गर्व की बात थी। सर सी0 वी0 रमन जब स्वीडन के स्टॉकहोम में नोबेल पुरस्कार लेने गए थे, तो वहाँ नोबेल पुरस्कार को लेने के दौरान कैसे वह अपने गरीब देश को याद कर भरी सभा में रोने लगे थे, इसका विवरण उन्होंने खुद दिया है। जिस सभा

में यह पुरस्कार दिया जाना था, वहां सूट और टाई पहने हुए गणमान्य मौजूद थे, सर सी0 वी0 रमन अपनी चिर परिचित वेशभूषा सिर में पगड़ी और बंद गले के कोट में थे। उन्होंने सभा में चारों ओर देखा तो उन्हें अपनी वेशभूषा का या अपनी मिट्टी से जुड़ा कोई भी शख्स नहीं दिखाई दिया। यह सोचकर वह थोड़ा भावुक हो गए, इसके बाद उन्होंने ऊपर की ओर देखा तो उन्हें ब्रिटिश राष्ट्र ध्वज लहराते हुए दिखाई दिया। उन्होंने सोचा कि मेरे गरीब देश का कोई नागरिक तो छोड़िये मैं अपने देश के झंडे के नीचे भी यह सम्मान नहीं ले सका, यह सोचते ही उनकी आंखों से आंसू बहने लगे और वे सोचने लगे, मैं नोबल पुरस्कार पाने वाला भारत का ऐसा नागरिक हूँ, जो ब्रिटेन का गुलाम है। सर सी0 वी0 रमन कम उम्र में ही एनी बेसेंट के भाषणों और ले खों से दो–चार हो चुके थे और उन पर बेसेंट के भारत प्रेम का प्रभाव भी पड़ा। सर सी0 वी0 रमन का वाद्य यन्त्र की भौतिकी का ज्ञान इतना गहरा था कि सन् 1927 में जर्मनी में प्रकाशित बीस खण्डों

वाले भौतिकी विश्वकोश के आठवें खण्ड के लिए वाद्ययंत्रों की भौतिकी का एक लेख लिखवाया गया। वे अकेले सम्पूर्ण भौतिकी कोश में ऐसे लेखक हैं जो जर्मन नहीं है। भारतीय विज्ञान को अपनी अवधारणाओं और प्रायोगिक प्रक्रियाओं की मौलिकता के लिए जाना जाता है, लेकिन इसके साथ ही इसे इसकी अविश्वसनीयता और स्वयं शोधकार्य के दौरान आलोचनात्मक रवैए के अभाव के लिए भी जाना जाता है। भारतीय लोगों में निहित वैज्ञानिक विकास की महान संभावनाओं को देखते हुए यह जरूरी है कि उन्हें आत्मनिर्भर और स्वतंत्र समुदाय में परिणत किया जाए।

भारत के ही एक और महान वैज्ञानिक थे आचार्य प्रफुल्ल चंद्र राय (आचार्य पी0 सी0 राय)। आचार्य पी0 सी0 राय भारत के महान रासायनिक शास्त्री थे। आचार्य पी0 सी0 राय महात्मा गांधी से काफी प्रभावित थे और उनकी तरह सादा–जीवन उच्च विचार के आदर्शों पर चलते थे। उनकी मेहनत, निष्ठा और देशप्रेम से महात्मा गांधी भी

काफी प्रभावित थे। वह अक्सर युवाओं और छात्रों को उनका उदाहरण दिया करते थे। गांधी उनकी वेशभूषा देखकर कहते थे कि ऐसे सादगी भरे इंसान को देखकर लगता ही नहीं कि यह इतना महान वैज्ञानिक होगा। आचार्य पी0 सी0 राय के मन में आजादी की लौ हमेशा जलती रहती थी। उन्होंने देश की आजादी को हमेशा विज्ञान से ऊपर रखा। उनका मानना था कि विज्ञान मानव जगत की सेवा के लिए है और इसकी राह राजनीतिक स्वतंत्रता से होकर जाती है, वरना विज्ञान का फायदा देशवासियों को न मिलकर उन पर राज करने वालों को मिलेगा। वह अपने छात्रों से अक्सर कहते थे "विज्ञान प्रतीक्षा कर सकता है लेकिन स्वराज नहीं" स्वदेशी वैज्ञानिकों का पुनर्जागरण काल स्वतंत्रता संघर्ष के साथ–साथ जारी रहा और भारतीय समाज में वह चलता रहा। अत्यंत मेधावी और एडिनबरा यूनिवर्सिटी से पढ़े राय को शिक्षा सेवा में अंग्रेजों के भेदभाव के कारण जगह नहीं दी गई। प्रेसिडेंसी कॉलेज में भी इन्हें काफी कम वेतन

मिलता था। उन्होंने इसके खिलाफ आवाज उठाई तो अंग्रेजों ने ताना दिया कि आप इतने मेधावी हैं तो अपना शोध क्यों नहीं करते। इसके बाद उन्होंने अपने कमरे में ही प्रयोगशाला बना डाली जिसे आज आज बंगाल केमिकल के नाम से जाना जाता है। 1905 के स्वदेशी आंदोलन के दौरान स्वदेशी उत्पादों को बढ़ावा देते हुए आचार्य पी0 सी0 राय ने ″बंगाल केमिकल्स स्वदेशी स्टोर्स″ की स्थापना की। वह रसायन के साथ ही इतिहास के भी अध्येता थे और उन्होंने 'हिस्ट्री ऑफ हिंदू केमिस्ट्री' नामक विश्व विख्यात किताब लिखी। बंगाल के 1922 के अकाल में उन्होंने चंदा कर तीन लाख रुपये जमा किए थे। उस जमाने में कहा जाता था कि अगर गांधी के पास दो प्रफुल्ल और होते तो स्वराज जल्दी मिल जाता। आचार्य राय की स्वतंत्रता आन्दोलन में सक्रिय भागीदारी थी। उन्होंने असहयोग आंदोलन के दौरान कांग्रेस के रचनात्मक कार्यों में मुक्तहस्त आर्थिक मदद भी दी थी। आचार्य राय अपने एक मशहूर वक्तव्य में कहा थाः ″मैं रसायनशाला का

प्राणी हूँ, मगर ऐसे मौके भी आते हैं जब वक्त का तकाज़ा होता है कि टेस्ट–ट्यूब छोड़कर देश की पुकार सुनी जाए"। आजादी की लड़ाई में वैज्ञानिकों का जो योगदान रहा, वह आम लोगों को बताया जाना आवश्यक है। हम विज्ञान के सहयोग से अपने भविष्य की दिशा और दशा बदल सकते हैं।

ब्रिटिश शासन के दौरान कई भारतीय वैज्ञानिकों को लगातार भेदभाव का सामना करना पड़ा और उन्हे वैज्ञानिक अनुसंधान करने से रोका गया था। इसके एक सबसे प्रसिद्ध उदाहरण जगदीश चंद्र बोस हैं। बोस एक देशभक्त और सांस्कृतिक राष्ट्रवादी थे और उन्हें अपने देश की प्राचीन विरासत पर गर्व था। उन्होंने पश्चिमी देशों के सामने साबित कर दिखाया कि भारत के लोग भी विश्वस्तरीय वैज्ञानिक अनुसंधान कर सकते थे। बोस भौतिकी, जीव विज्ञान और वनस्पति विज्ञान के गहन अध्येता थे। रेडियो तरंगों के साथ ही उनकी पेड़–पौधों और भौतिकी के क्षेत्र में भी कई मौलिक उपलब्धियां हैं। बोस ने अपना अधिकांश अध्ययन

पौधों पर पादप अनुसंधान में किया। जैवभौतिकी के क्षेत्र में उनका प्रमुख योगदान पौधों में विभिन्न उत्तेजनाओं (जैसे, घाव, रासायनिक एजेंटों) के प्रवाहक पदार्थ की विद्युत प्रकृति का प्रदर्शन था, जिन्हें पहले रासायनिक प्रकृति का माना जाता था। पौधों की प्रकाश स्रोत की ओर उन्मुखता तथा गति को समझने के लिए बोस ने एक यंत्र का आविष्कार किया। वह पौधों के ऊतकों में माइक्रोवेव की क्रिया और कोशिका झिल्ली क्षमता में संबंधित परिवर्तनों का अध्ययन करने वाले पहले व्यक्ति भी थे। उन्होंने पौधों पर मौसमी प्रभाव के तंत्र, पौधों की उत्तेजनाओं पर रासायनिक अवरोधकों के प्रभाव और तापमान के प्रभाव पर शोध किया। 1885 में इंग्लैंड से प्राकृतिक विज्ञान की उच्च शिक्षा हासिल करने के बाद बोस भारत लौटे और प्रेसीडेंसी कॉलेज में उन्हें भौतिकी के प्राध्यापक के रूप में नियुक्ति मिली। परंतु यहाँ उनके साथ खुलेआम भेदभाव हुआ। वहाँ एक ही पद पर भारतीयों को अंग्रेजों की तुलना में एक तिहाई वेतन मिलता था। बोस ने इस पक्षपात का बेहद

अनूठे ढंग से विरोध किया, वेतन लेना अस्वीकार किया और तीन साल तक तमाम आर्थिक कठिनाइयों के बावजूद बगैर वेतन काम करते रहे। इस तरह सत्याग्रह का प्रयोग करने वाले वह पहले भारतीय वैज्ञानिक थे। आखिरकार 1988 में ब्रिटिश प्रशासन को बोस के न्यायोचित मांग के आगे झुकना पड़ा और तब जाकर उन्हें बकाया राशि के साथ पूरा वेतन मिला।

डॉ बीरबल साहनी एक भारतीय पुरावनस्पती वैज्ञानिक थे, जिन्होंने भारतीय उपमहाद्वीप के जीवावशेषों का अध्ययन कर इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया। वे एक भूवैज्ञानिक भी थे और पुरातत्व में भी गहन रूचि रखते थे। उन्होंने लखनऊ में 'बीरबल साहनी इंस्टिट्यूट ऑफ़ पैलियोबॉटनी की स्थापना की। जब वे कॉलेज में थे तब आजादी की लड़ाई चल रही थी और उन्होंने भी इसमें अपना अप्रत्यक्ष रूप से योगदान दिया। उन्होने हड़प्पा, मोहनजोदड़ो एवं सिन्धु घाटी के कई स्थलों का अध्ययन कर इस सभ्यता के बारे में अनेक

निष्कर्ष निकाले। उन्होंने सिन्धु घटी सभ्यता के एक स्थल रोहतक का अध्ययन किया और पता लगाया कि जो लोग सदियों पहले यहाँ रहते थे। एक विशेष प्रकार के सिक्कों को ढालना जानते थे। उन्होने चीन, रोम, उत्तरी अफ्रीकी आदि में भी सिक्के ढालने की विशेष तकनीक का अध्ययन किया। वे पुरा वनस्पति के प्रकांड विद्वान थे और अपना ज्ञान अपने तक ही सीमित नही रखना चाहते थे इसलिए छात्रों और युवा वैज्ञानिकों को प्रोत्साहन देते थे। विश्वविद्यालय के डीन के तौर पर उन्हे जो विशेष भत्ता मिलता था, उसका उपयोग उन्होंने नये शोध कार्य कर रहे वैज्ञानिकों के प्रोत्साहन में किया।

भारतीय परमाणु ऊर्जा कार्यक्रम के जनक होमी जहाँगीर भाभा की प्रारंभिक शिक्षा कैथरैडल स्कूल में हुई और आगे की शिक्षा के लिए जॉन केनन में पढने गये। विलक्षण बुद्धि के धनी होमी जहाँगीर भाभा ने मात्र 15 वर्ष की आयु में आइंस्टीन का सापेक्षता का सिद्धान्त पढ़ लिया था। भौतिक शास्त्र में उनकी अत्यधिक रुचि थी।

गणित भी उनका प्रिय विषय था। होमी जहाँगीर भाभा को प्रसिद्ध वैज्ञानिक रदरफोर्ड, डेराक, तथा नील्सबेग के साथ काम करने का अवसर मिला था। होमी जहाँगीर भाभा ने कॉस्केट थ्योरी ऑफ इलेक्ट्रान का प्रतिपादन करने साथ ही कॉस्मिक किरणों पर भी काम किया जो पृथ्वी की ओर आते हुए वायुमंडल में प्रवेश करती है। उन्होने कॉस्मिक किरणों की जटिलता को सरल किया। दूसरे विश्वयुद्ध के प्रारंभ में होमी जहाँगीर भाभा भारत वापस आ गये। उस समय तक होमी जहाँगीर भाभा विश्वख्याति प्राप्त कर चुके थे। उन्होनें मातृभूमि के लिए कार्य करने का निश्चय किया। उनका मानना था कि सिर्फ विज्ञान ही देश को उन्नति के पथ पर ले जा सकता है। होमी भाभा का उद्देश्य था कि भारत को बिना बाहरी सहायता से परमाणु शक्ति संपन्न बनाना। मेहनती और सक्रिय लोगों को पसंद करने वाले होमी भाभा अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर अणुशक्ति की शान्ति पर बल देते थे।

पराधीन भारत के बारे में तब अंग्रेजों ने बोलना शुरू किया कि भारतीय लोगों में स्वशासन करने की क्षमता नहीं है। भारतीय सभ्यता की कोई उपलब्धियाँ नहीं हैं, ताकि भारतीयों में हीन भावना का जन्म हो। प्रतिक्रिया स्वरूप स्वतंत्रता सेनानियों तथा वैज्ञानिकों ने भारतीय समाज के बीच सभ्यता की प्राचीन उपलब्धियाँ गिनानी शुरू कीं, जिससे कि हम भारतीयों में राष्ट्रीयता की भावना का जन्म हुआ।

सन्दर्भ

1 एस रामासेशन और सी रामचन्द्र राव द्वारा संकलित "सी0 वी0 रमनः एक चित्रमय जीवन–चरित्र", भारतीय विज्ञान अकादमी, बेंग्लोर (1989)।

2 सर सी0 वी0 रमण, "नई भौतिकीः विज्ञान के पहलुओं पर वार्तालाप, फिलासोफ़ीकल लाइब्रेरी", न्यूयार्क, (1951)।

3 चटर्जी और सांतिमय, "आचार्य प्रफ्फुल चन्द्र राय, द ग्रोथ एंड डिक्लाइन ऑफ़ ए लीजेंड साइंस एंड कल्चर", (1985)।

4 सुबोध महंती, "आचार्य जगदीश चन्द्र बोस बायोग्राफी ऑफ़ साइंटिस्ट", विज्ञान प्रसार, डिपार्टमेंट ऑफ साइंस एंड टेक्नोलॉजी गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, (2012)।

5 दिलीप एम सांगवी , "बायोग्राफी ऑफ़ होमी जंहागिरी भाभा आर्किटेक्ट ऑफ़ इंडिया" (2004)।

6 विकिपीडिया।

ISBN: 978-81-951568-9-4

स्वतन्त्रता प्राप्ति में महिलाओं की भूमिका

श्रीमती रेखा श्रीवास्तव

सहायक प्रोफेसर– समाजशास्त्र

डॉ0 अम्बेडकर राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,

ऊँचाहार–रायबरेली (उ0प्र0)

संसार में परमात्मा ने स्त्री–शक्ति का मुकाबला करने वाली कोई दूसरी शक्ति उत्पन्न नहीं की। वास्तव में भारतीय इतिहास में गौरवपूर्ण अध्याय के

निर्माण कार्य में जितना सहयोग स्त्री शक्ति ने दिया है उतना अभी तक किसी ने नहीं दिया। वैसे हमारे यहाँ आदिकाल जब देवासुर संग्राम छिड़ा और राक्षसी शक्ति को नष्ट करने के लिए दैवी शक्ति का आश्रय लिया गया तब से युद्ध में प्रतिभाग कर शत्रुओं के दाँत खट्टे करने वाली अनेक देवियों की कहानियाँ लोकप्रिय हैं। भारत के स्वाधीनता संग्राम में भी स्त्री शक्ति अग्रणी रही। इतिहास गवाह है कि भारत के स्वतंत्रता संग्राम में महिलाओं ने अंग्रेजों के विरूद्ध पुरूषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। उन्होंने अपनी बहादुरी और साहस का परिचय देते हुए अपनी जान न्यौछावर कर दी है। महिलाओं ने भारत के स्वतंत्रता आंदोलन में अंग्रेजी शासन के विरुद्ध भारतीय स्वतंत्रता संग्राम अनेक दौरों से गुजरा। 1857 के विद्रोह में विश्व के सबसे महान् व शक्तिशाली साम्राज्य को चुनौती दी गई। इस समय राजघराने की महिलाएं भी आजाद भारत का सपना पूरा करने के लिए पुरूषों के साथ एकजुट हुईं जिनमें झांसी की महारानी

लक्ष्मीबाई और अवध की बेगम हजरत महल का नाम प्रमुखता से लिया जाता है। देश की आजादी में रानी लक्ष्मी बाई और रानी चेनम्मा जैसी वीरांगनाओं की शहादत तथा आजादी के बाद सरोजिनी नायडू और लक्ष्मी सहगल जैसी वीरांगनाओं की देश सेवा को भला कौन भूल सकता है। मतलब देश की बेटियों ने अंग्रेजों के विरूद्ध अपनी वीरता, साहस और नेतृत्व क्षमता का समय समय पर अभूतपूर्व परिचय दिया।

गांधी जी भी राष्ट्रीय आन्दोलन में महिलाओं की भागीदारी के पूर्णतः पक्षधर थे। उनके समय में भी जब सभी धर्मों व सम्प्रदायों के अनुयायियों तथा जनता के प्रत्येक वर्ग ने राष्ट्रीय आन्दोलन में बड़े पैमाने पर भाग लेकर उसे जन आंदोलन में परिवर्तित कर दिया तब उसमें भी महिलाएँ पीछे नहीं रहीं। राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लेकर महिलाओं ने न केवल ब्रिटिश शासन के विरुद्ध तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त की बल्कि गिरफ्तार भी हुई। कुल मिलाकर महिलाओं के अंदर इस समय जो राष्ट्रचेतना पैदा

हुई थी उसने यह सिद्ध कर दिया कि वे एक ऐसी राष्ट्रीय शक्ति है जो राष्ट्र की स्वाधीनता और अधिकारों के लिए सभी बंधनों को तोड़ देगी। आरंभ से अंत तक शंतिपूर्ण आन्दोलनों एवं क्रांतिकारी गतिविधियों में सक्रिय रहने वाली भारतीय महिलाओं की लंबी फेहरिस्त है और एक लेख में सभी को याद करना संभव नहीं है। फिर भी 'आजादी का अमृत महोत्सव' के हीरक जयंती अवसर पर राष्ट्र की स्वाधीनता और उसके निर्माण में अपनी अहम् भूमिका अदा करने वाली निम्न महिलाओं के योगदान को नजरअंदाज नहीं कर सकते।

झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई

रानी लक्ष्मीबाई मराठा शासित झाँसी राज्य की रानी थीं और 1857 के प्रथम भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में अंग्रेजी हुकुमत के विरुद्ध बिगुल बजाने वाले वीरों में से एक थीं। वे ऐसी वीरांगना थीं जिन्होंने मात्र 23 वर्ष की आयु में ही ब्रिटिश साम्राज्य की सेना से मोर्चा लिया और रणक्षेत्र में वीरगति को प्राप्त हो गयीं परन्तु जीते जी अंग्रेजों को अपने

राज्य झाँसी पर कब्जा नहीं करने दिया। जिन नारियों ने भारत माता के गौरव को ऊँचा किया है, उनमें महारानी लक्ष्मीबाई महान थीं। यही वह महिला थीं, जिसने भारत की स्वतंत्रता की मशाल लेकर, भारत की स्वाधीनता के लिए हँसते–हँसते अपने प्राणों का उत्सर्ग कर दिया। उनका शौर्य, साहस और बलिदान हमेशा भारतीय महिलाओं को वीरता की प्रेरणा देता रहेगा। हिन्दी के अनेक कवियों ने रानी की वीरता का गुणगान किया है। झांसी की रानी के बारे में किसने नहीं सुना होगा। उनकी बहादुरी भरे कारनामों से तो अंग्रेजों के भी छक्के छूटते थे। हम आज उन्हें उनकी बहादुरी के कारण ही याद करते हैं।

बेगम हजरत महल

10 मई 1857 को मेरठ में विद्रोह के आरंभ होने के बाद 30 मई 1857 को अवध में विद्रोह की घोषणा की गई। अंग्रेजों के विरुद्ध इस विद्रोह की नेता अवध के नवाब वाजिद अली शाह की बेगम

हजरत महल थीं। बेगम हजरत महल एक नर्तकी थी। वो अपने सौन्दर्य व गुणों के कारण अवध के अन्तिम नवाब वाजिद अली शाह की बेगम बन गईं। सुन्दरता के साथ–साथ हजरत महल में प्रशासनिक योग्यता कूट–कूट कर भरी हुई थी। उनका व्यक्तित्व आकर्षक और मोहक था। सन 1857 के विद्रोह में बेगम हजरत महल का नाम स्वर्ण अक्षरों में लिखा गया। वे पहली महिला स्वतंत्रता सेनानी थीं जिन्होंने अंग्रेजों के शोषण के खिलाफ देश के गांव–गांव को एक करने का जिम्मा उठाया था। उन्होंने अंग्रेजों का डटकर सामना करते हुए लखनऊ शहर पर कब्जा किया। बेगम हजरत महल की हिम्मत का इसी से अंदाजा लगाया जा सकता है कि उन्होंने मटियाबुर्ज में जंगे–आजादी के दौरान नजरबंद किए गए वाजिद अली शाह को छुड़ाने के लिए लार्ड कैनिंग के सुरक्षा दस्ते में भी सेंध लगा दी थी। योजना का भेद खुल गया, वरना वाजिद अली शाह शायद आजाद करा लिए जाते। उन्होंने अपने बेटे को अवध का राजा भी घोषित किया।

हालांकि, बाद में अंग्रेजों ने नये नवाब को जबरन नेपाल भेज दिया। देश के पहले स्वाधीनता संग्राम के रूप में भड़के विद्रोह को अवध में चिंगारी बनाने का काम बेगम हजरत महल ने ही किया था जो शीघ्र ही अवध के अतिरिक्त अन्य प्रांतों में भी फैल गया। इस प्रकार उन्होंने देश की आजादी में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की।

अजीजन बेगम

जब कानपुर में क्रांति की अग्नि प्रज्वलित हुई तो उसमें कानपुर की वीरांगना अजीजन का प्रशंसनीय योगदान था। अजीजन बेगम भी अपने समय की प्रसिद्ध नर्तकी थी। कानपुर में क्रांति के शुरू होने पर अजीजन ने वीर, साहसी और निर्भय महिलाओं की एक टुकड़ी तैयार की। उस महिला सैनिक दल की वीरांगनाएँ पुरुष वेश में घोड़ों पर सवार हाथ में नंगी तलवार लेकर निकल पड़ी, वे पुरुषों को स्वाधीनता संग्राम में सम्मिलित होने के लिए कहती, वे घायलों की सेवा सुश्रूषा करती

तथा युद्धरत सैनिकों को दूध, मिठाई और फल बांटती। जब आवश्यकता पड़ती तो रणभूमि में संकट तथा गोली वर्षा की परवाह न कर युद्धरत सैनिकों को कारतूस पहुचांती। यह सब वीरांगना अजीजन की प्रेरणा तथा नेतृत्व का चमत्कार था कि परदे में रहने वाली स्त्रियाँ रणभूमि में थीं।

एनी बेसेंट

देश में स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए न केवल भारतीय नेताओं ने अपनी जान की बाजी लगाई बल्कि अनेक विदेशी नागरिकों ने भी भारत को स्वतंत्रता दिलाने में अपना योगदान दिया। भारत के स्वतंत्रता संग्राम में एनी बेसेंट और उनके होमरूल आन्दोलन का विशेष योगदान रहा। 1847 में लंदन में जन्मी एनी बेसेंट 1893 में 'थियोसोफिकल सोसाइटी' के आमंत्रण पर भारत पहुँची। एनी बेसेंट हिंदू धर्म से बहुत प्रभावित थी। उन्होंने हिन्दू धर्म, दर्शन और संस्कृति के अध्ययन के साथ–साथ हिंदू आचार–व्यवहार को भी आदर की दृष्टि से देखा।

वैश्विक स्तर पर एनी बेसेंट ने भारतीयों को अपनी मान्यताओं के प्रति सम्मान करना सिखाया।

मैडम भीकाजी कामा

भीकाजी कामा पारसी परिवार में जन्मी एक ऐसी भारतीय महिला थीं जिन पर अँग्रेजी शिक्षा के बावजूद अँग्रेजियत का कोई असर नहीं था। वैसे पारसी अपनी गोरी चमड़ी और अँग्रेजी शिक्षा के कारण अँग्रेजों के ज्यादा निकट माने जाने वाले हिंदुस्तानी थे, लेकिन भीकाजी कामा एक पक्की राष्ट्रवादी और स्वतंत्रता संग्राम सेनानी थीं। उन्हें भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष के इतिहास में सबसे बहादुर महिला के रूप में भी याद किया जा सकता है। फिरंगी भीकाजी कामा के क्रिया–कलापों से भयभीत थे और उन्होंने उनकी हत्या के प्रयास भी किए, पर देश–प्रेम से उन्नत भाल भला कभी झुकता है। उन्होंने अंग्रेजों के विरोध के बावजूद कई राष्ट्रीय अंतरराष्ट्रीय मंचों पर हिस्सा लिया और क्रांतिकारी साहित्य लिखे। उन्होंन स्टुटगार्ट जर्मनी में देश की

आजादी पर उन्होंने कहा था, ‘हिंदुस्तान आजादी का परचम लहरा रहा है। अँग्रेजों, उसे सलाम करो। यह झंडा हिंदुस्तान के लाखों जवानों के रक्त से सींचा गया है। सज्जनों, मैं आपसे अपील करती हूँ कि उठें और भारत की आजादी के प्रतीक इस झंडे को सलाम करें।’ वे भारतीय होम रूल सोसायटी स्थापित करने वालों में से एक रहीं। उन्होंने भारत में लिंग समानता के लिए भी संघर्ष किया। इस तरह उन्होंने हमारे दिलों में अपना नाम गर्व के साथ आज भी जिन्दा रखा है।

सिस्टर निवेदिता

उनका वास्तविक नाम मारग्रेट नोबल था। उस दौर में बहुत–सी विदेशी महिलाओं को हिंदुस्तान के व्यक्तित्वों और आजादी की लड़ाई ने प्रभावित किया था। स्वामी विवेकानंद के जीवन और दर्शन के प्रभाव में जनवरी, 1898 में वह हिंदुस्तान आईं। उन्होंने स्त्रियों की शिक्षा और उनके बौद्धिक उत्थान की जरूरत को महसूस किया और इसके

लिए बहुत बड़े पैमाने पर काम भी किया। प्लेग की महामारी के दौरान उन्होंने पूरी शिद्दत से रोगियों की सेवा की और भारत के स्वतंत्रता आंदोलन में भी अग्रणी भूमिका निभाई। भारतीय इतिहास और दर्शन पर उनका बहुत महत्वपूर्ण लेखन है, जो भारतीय उपमहाद्वीप में स्त्रियों की बेहतरी की प्रेरणाओं से संचालित है।

कस्तूरबा गाँधी

महात्मा गाँधी की आजीवन संगिनी कस्तूरबा की पहचान सिर्फ गाँधी जी की पत्नी के रूप में नहीं थी। आजादी की लड़ाई में उन्होंने हर कदम पर अपने पति का साथ दिया था, बल्कि यह कि कई बार स्वतंत्र रूप से और गाँधीजी के मना करने के बावजूद उन्होंने जेल जाने और संघर्ष में शिरकत करने का निर्णय लिया। वह एक दृढ़ आत्मशक्ति वाली महिला थीं और गाँधीजी की प्रेरणा भी। गाँधी ने बा के बारे में खुद स्वीकार किया था कि उनकी दृढ़ता और साहस खुद गाँधी से भी उन्नत थी।

लक्ष्मी सहगल

पेशे से डॉक्टर लक्ष्मी सहगल का पूरा नाम लक्ष्मी स्वामीनाथन सहगल था। द्वितीय विश्वयुद्ध के समय उन्होंने एक डॉक्टर के रूप में सामाजिक कार्यकर्ता की प्रमुख भूमिका निभाई थी। नेताजी सुभाष चंद्र बोस की अटूट अनुयायी के तौर पर वे इंडियन नेशनल आर्मी में शामिल हुईं थीं और 'रानी लक्ष्मी रेजिमेन्ट' की कमाण्डर बनी। वो आजाद हिन्द फौज की अधिकारी तथा आजाद हिन्द सरकार में महिला मामलों की मंत्री थीं। उन्हें वर्ष 1998 में पद्म विभूषण से नवाजा गया था।

सरोजिनी नायडू

भारत कोकिला सरोजिनी नायडू सिर्फ स्वतंत्रता संग्राम सेनानी ही नहीं, बल्कि बहुत अच्छी कवियत्री भी थीं। गोपाल कृष्ण गोखले से एक ऐतिहासिक मुलाकात ने उनके जीवन की दिशा बदल दी। दक्षिण अफ्रीका से हिंदुस्तान आने के बाद गाँधीजी पर भी शुरू–शुरू में गोखले का

बहुत गहरा प्रभाव पड़ा था। सरोजिनी नायडू ने खिलाफत आंदोलन की बागडोर सँभाली। निश्चित रूप से सरोजिनी नायडू आज की महिलाओं के लिए एक रोल मॉडल हैं। जिस जमाने में महिलाओं को घर से बाहर निकलने तक की आजादी नहीं थी, सरोजिनी नायडू घर बाहर आकर देश को आजाद करने के लक्ष्य के साथ दिन रात महिलाओं को जागरूक कर रही थीं। सरोजिनी नायडू उन चुनिंदा महिलाओं में से थीं जो बाद में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की पहली प्रेसिडेंट बनीं और उत्तर प्रदेश के गवर्नर पद पर भी रहीं।

विजयलक्ष्मी पंडित

एक संपन्न, कुलीन घराने से ताल्लुक रखने वाली और जवाहरलाल नेहरू की बहन विजयलक्ष्मी पंडित भी आजादी की लड़ाई में शामिल थीं। सविनय अवज्ञा आंदोलन में भाग लेने के कारण उन्हें जेल में बंद किया गया था। वह एक पढ़ी–लिखी और प्रबुद्ध महिला थीं और विदेशों में आयोजित

विभिन्न सम्मलेन में उन्होंने भारत का प्रतिनिधित्व किया था। भारत के राजनीतिक इतिहास में वह पहली महिला मंत्री थीं। वह संयुक्त राष्ट्र की पहली भारतीय महिला अध्यक्ष थीं। वह स्वतंत्र भारत की पहली महिला राजदूत थीं, जिन्होंने मास्को, लंदन और वॉशिंगटन में भारत का प्रतिनिधित्व किया।

अरुणा आसफ अली

हरियाणा के एक रूढिवादी बंगाली परिवार से आने वाली अरुणा आसफ अली ने परिवार और स्त्रीत्व के तमाम बंधनों को अस्वीकार करते हुए जंग–ए–आजादी को अपनी कर्मभूमि के रूप में स्वीकार किया। 1930 में नमक सत्याग्रह से उनके राजनीतिक संघर्ष की शुरुआत हुई। अँग्रेजी हुकूमत ने उन्हें एक साल के लिए जेल में कैद कर दिया। उन्हें तब भी रिहा नहीं किया गया जब गाँधी–इर्विन समझौते के तहत सभी सत्याग्रह के कैदियों को रिहा किया जा रहा था। अरुणा आसफ अली उस दौर में कांग्रेस पार्टी की सक्रिय सदस्य रहीं और देश की

आजादी के लिए कंधे से कंधा मिलाकर स्वतंत्रता संग्राम में हिस्सा लिया। जेल होने पर उन्होंने तिहाड़ जेल के राजनैतिक कैदियों के अधिकारों की लड़ाई भी लड़ी। जेल में रहते हुए उन्होंने कैदियों के हित के लिए भूख हड़ताल किया। इसके लिए उन्हें कालकोठरी की सजा झेलनी पड़ी थी।

ऐतिहासिक भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान 9 अगस्त, 1942 को अरुणा आसफ अली ने गोवालिया टैंक मैदान में राष्ट्रीय झंडा फहराकर आंदोलन की अगुवाई की। वह एक प्रबल राष्ट्रवादी और आंदोलनकर्मी थीं। उन्होंने लंबे समय तक भूमिगत रहकर काम किया। सरकार ने उनकी सारी संपत्ति जब्त कर ली और उन्हें पकड़ने वाले के लिए 5000 रु. का ईनाम भी रखा। उन्होंने भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस की मासिक पत्रिका 'इंकलाब' का भी संपादन किया। 1998 में उन्हें 'भारत रत्न' से सम्मानित किया गया।

मीरा बेन

मीरा बेन लंदननिवासी गोरी नस्ल के एक अँग्रेज सैन्य अधिकारी की बेटी थी और नाम था मैडलिन स्लेड। लेकिन वो गाँधी के व्यक्तित्व के जादू में बँधी सात समंदर पार काले लोगों के देश की आजादी के लिए हिंदुस्तान चली आईं और फिर यहीं की होकर यहीं पर रह गईं। गाँधी ने ही उन्हें मीरा बेन नाम दिया था। उनका अपनी इस विदेशी पुत्री पर विशेष अनुराग था। मीरा बेन गाँधी की ही भाँति सादी धोती पहनती, सूत कातती और गाँव–गाँव घूमतीं। मीरा बेन ने इस देश की धरती पर भले ही जन्म नहीं लिया था पर वह सही मायनों में हिंदुस्तान की बेटी थीं।

कमला नेहरू

कमला नेहरू जवाहर लाल नेहरू की पत्नी थीं। वो जब ब्याहकर इलाहाबाद आईं तो एक कम उम्र की सामान्य नवेली ब्याहता भर थीं। लेकिन सीधी–सादी हिंदुस्तानी लड़की वक्त पड़ने पर कोमल

बहू से लौह स्त्री साबित हुईं। वो धरने–जुलूस में अँग्रेजों का सामना करती है, भूख हड़ताल करती है और जेल की पथरीली धरती पर सोती है। असहयोग आंदोलन और सविनय अवज्ञा आंदोलन में उन्होंने बढ़–चढ़कर शिरकत की। नेहरू के साथ–साथ कमला नेहरू की सारी प्रेरणाओं ने भी उनकी पुत्री इंदिरा को देश के निर्माण में शिखर तक पहुंचाया। कमला नेहरू के आखिरी दिन काफी मुश्किल भरे रहे। स्विटजरलैंड के अस्पताल में टीबी की बीमारी से जूझ रही कमला की जब मौत हुई तब नेहरू जेल में थे।

सुचेता कृपलानी

सुचेता कृपलानी एक स्वतंत्रता सेनानी थीं। स्वतंत्रता आंदोलन के साथ उनका जिक्र हमेशा किया जाता है। आंदोलन के हर चरण में उन्होंने बढ़–चढ़कर हिस्सा लिया और कई बार जेल गईं। इंडियन नेशनल कांग्रेस में शामिल होने के बाद उन्होंने राजनीति में प्रमुख भूमिका निभाई थी। सन्

1946 में उन्हें असेंबली का अध्यक्ष चुना गया। उन्हें भारतीय संविधान के निर्माण के लिए गठित संविधान सभा की ड्राफ्टिंग समिति के एक सदस्य के रूप में निर्वाचित किया गया था। उन्होंने भारतीय संविधान सभा में 'वंदे मातरम' भी गाया था। विभाजन के दंगों के दौरान उन्होंने महात्मा गांधी के साथ रह कर कार्य किया था। सन् 1958 से लेकर 1960 तक वह भारतीय राष्ट्रीय कॉंग्रेस की जनरल सेक्रेटरी रहीं और 1963 में उत्तर प्रदेश की मुख्यमंत्री बनीं। इंदिरा गाँधी ने कभी सुचेता कृपलानी के बारे में कहा था, 'ऐसा साहस और चरित्र जो स्त्रीत्व को इस कदर ऊँचा उठाता हो, महिलाओं में कम ही देखने को मिलता है।'

ऊषा मेहता

स्वतंत्रता सेनानी ऊषा मेहता ने भारत के स्वतंत्रता आंदोलन में सक्रिय भूमिका निभाई थी। भारत छोड़ो आंदोलन (1942) के दौरान कुछ महीनों तक कांग्रेस रेडियो काफी सक्रिय रहा था। इसे शुरू

करने वाली ऊषा मेहता ही थीं। वह भारत छोड़ो आंदोलन के समय खुफिया कांग्रेस रेडियो चलाने के कारण पूरे देश में 'सीक्रेट कांग्रेस रेडियो' के नाम से भी विख्यात हुईं। इस रडियो के कारण ही उन्हें पुणे की येरवादा जेल में रहना पड़ा। वे महात्मा गांधी की अनुयायी थीं।

दुर्गा बाई देशमुख

दुर्गाबाई देशमुख भारत की स्वतंत्रता सेनानी, सामाजिक कार्यकर्ता तथा स्वतंत्र भारत के पहले वित्तमंत्री चिंतामणराव देशमुख की पत्नी थीं। दुर्गा बाई देशमुख ने महात्मा गांधी के सत्याग्रह आंदोलन में भाग लिया व भारत की आजादी में एक वकील, समाजिक कार्यकर्ता, और एक राजनेता की सक्रिय भूमिका निभाई। उन्होंने शिक्षा के क्षेत्र से लेकर महिलाओं, बच्चों और जरूरतमंद लोगों के पुनर्वास तथा उनकी स्थिति को बेहतर बनाने हेतु एक 'केंद्रीय समाज कल्याण बोर्ड' की नींव रखी थी।

इस प्रकार भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की लड़ाई केवल पुरुषों की हिस्सेदारी से फतह नहीं की गई, बल्कि इस महायज्ञ में महिलाओं की भूमिका भी उल्लेखनीय है। महिलाओं ने राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास में अपने आप को विविध आयामों के साथ प्रस्तुत किया। शांति प्रिय आंदोलनों से लेकर क्रांतिकारी आन्दोलनों में स्त्रियों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई. इन्होंने पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर अपने देश के स्वतंत्रता संघर्ष में भाग लिया। स्त्रियों ने देश के प्रति प्रेम भावना का परिचय देते हुए व उसे स्वतंत्र कराने के लिए सभी तरीको से अपना योगदान दिया। असंख्य महिलाओं के स्वतंत्रता आंदोलन में भाग लेने के कारण ही आजादी का यह महान आंदोलन सक्रिय बन पड़ा। 1857 से 1947 तक चले महान भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में महिलाओं की भूमिका के बारे में इस आलेख से प्राप्त सामान्य जानकारी निश्चय ही पाठक के मन में और अधिक जानने की जिज्ञासा उत्पन्न करेगी।

संदर्भ

1 विपिन चन्द्र, भारत का स्वतंत्रता संघर्ष।

2 विश्व प्रकाश गुप्ता एवं मिहिनी गुप्ता, संग्राम और महिलाएँ।

3 डॉ एस. एल. नागोरी एवं कांता नागोरी, भारतीय वीरांगनाएं।

4 एल. पी. माथुर, भारत के महिला स्वतंत्रता सेनानी।

5 शालिनी सक्सेना, स्वाधीनता आंदोलन में मध्यप्रांत की महिलाएँ।

6 आशारानी व्होरा, महिलाए और स्वराज्य।

7 प्रयागदत्त शुक्ल, क्रांति के चारड।

8 मोहम्मद शमीम, छत्तीसगढ़ में आंदोलन में छात्रो की भूमिका।

ISBN: 978-81-951568-9-4

UNTOLD STORY OF 1857

Dr. Rajesh Kumar Chaturvedi
Additional Secretary
U.P. State Council of Higher Education
Lucknow.

The 'Great mutiny 'which lasted from may 10th, 1857 to April 1859 was a deliberate and open challenge to the legitimacy of the company Raj. Chapaties and lotus flowers began to calculate around large parts of India, quoting the

famous line “Sub lal ho gea hai”, passed around by people, from town to town and village to village, as a symbol of the prophecy and a sign of the coming revolt.

When the 11th and 20th native cavalry of the Bengal Army assembled in Meerut on 10th may, they broke rank and turned on their commanding officers. They ,then, liberated the 3rd regiment and attacked the European Cantonment where they are reported to have killed all the Europeans they could find, including women and children and burned their houses. There is however some contemporary British accounts that the suggest that some sepoys escorted their officer to safety and then rejoined their mutinous comrades. In Malleson’s words, It is due to some of them (sepoys) to

state that they did not to quit Meerut before they had seen to a place of safety those officers whom they most respected.

This remark applies specially to the men of the 11th N.I. who had gone most reluctantly into the movement. Before they left, two sipahis is of that regiment had escorted two ladies with their children to the carabineer barracks. They had then rejoined their comrades.[1]

The rebellion now spread beyond the armed forces, but it did not result in complete popular uprising as its leader had hoped. The Indian side was not completely unified. While Bahadur Shah Zafar was restored to the imperial throne, there was a fraction that wanted the Maratha rulers to be enthroned as well as

the Awadhis wanted to retain the powers that their Nawabs used to have.

The war was mainly centered in the Northern and the central areas of India. Delhi, Lucknow, Counpur, Jhansi, Bareilly, Arrah and Jagdishpur were the main centres of conflict. Bhojpuriya Fara and Jagdishpur supporter the main centers of a conflict. The Bhojpurias of Arrah and Jagdishpur supported the Marathas. The Marathas, Rohillas and Awadhis supported Bahadur Shah Zafar and were against the Britishers. There was calls for jihad by some leaders including the millenarian Ahmdullah Shah, taken up by the Muslims particularly Muslims artisans, which caused the British to think that the Muslims were the main force behind this event. In Awadh, Sunnie

Muslim did not want to see a return to Shiite rule, So they often refused to join what they a perceived to be a Shia rebellion.

Rao Tularam of Haryana along with from Pram Subh Yadav fought with the British army at Nasibpur and then went to collect arms from Russia which had just been in a war with the British in the Crimea, but he died on the way. When the tribal leader from Peshawar sent a letter offering help. The king replied that he should not come to Delhi because the treasury was empty and the army had become uncontrollable.

In January 1857, lotus and chapaties were circulated in different regiments and villages in North India and this created a

sufficient curiosity among the British officers. The distribution was made in many cases through the village chaukidars who thought that all this he was doing under government instructions. Though many have tried to connect lotus and chapatti with the disturbances and discontentment, yet there is no definite evidence to link the two. Thus the contemporary historians have failed to give any authentic account of both the origin as well as the purpose of the chapattis and lotus circulation among the soldiers. If at all it was a step towards conspiracy, then that would have become public at some stage but that has not happened even up today. According to Sir Syed Ahmed Khan, "The fact is that even at the present day we don't know what

caused the distribution of these chapattis."

Subaltern historiography asserts that popular initiative shaped the mass violence that unfolded against the alien rigime in 1857.[2] Rudranshu Mukerjee goes on to say that the rebels indulged in actsof symbolic violence. Instances of popular unrent were symptoms of the popular hatred and anger.[3]

Both the rebels and the E I C's soldiers attacked non-combatants and private property in an urge to revenge. For the rebels the prime targets were the white people, their houses and business enterprises. According to the calculation of one of the British officer who fought in the 1857 mutiny, in the North West

provinces, about one-fifth of the European inhabitants were killed by the mutineers.[4]

In Delhi, the rebels killed Europeans and set fire to their houses.[5] The mutineers at Delhi destroyed The Delhi Bank where Europeans kept their money and burnt all the accounts.[6]

For miles around Allahabad, the houses belonging to the British were burnt and their property looted.[7]

On June 5th, 1857 the 37th Infantry Regiment attacked the Indigo factories of the British Planters and the house of the British offices at Jaunpur.[8]

During August 1857, at Jhansi, the rebels make a public bonfire of official

records.[9]

Both the rebels and the British inflicted violence on the civilians. Ruse's troops attack unarmed Indian civilians. J. H. Sylvester, a medical officer with army made the following entry on October 25, 1857 in his diary:-

The Consequence was the men off duty and even some of the native soldiers but chiefly the the 86th and Artillery was frightfully drunk having seized the native liquour shops. Then they commenced looting killing everything black, old man, young women and children! This of the course was to deplored but I had anticipated this. They shouted Kanpur Delhi, and down they went. (Indecipherable) says he saw a room full

of dead women with children sucking and their breasts. Other woman brought out dead, children supplicating for mercy".[10]

When James Neill with the Madras Fusiliers marched from Banaras to Allahabad, he systematically executed 6,000 Indian. The men killed where shopkeepers, artisans, peddlers and porters. They were hanged on the branches of the tree. The favorite phrase among the white soldiers was 'to bag the niggers'. The objective was to frighten the people into submission and tranquility. The dead bodies hanging at the market places and roads were visible symbols of British authority. When the stench became too much the dead bodies were dumped on the carts and disposed of.[11]

For survival both the British troops as well as the rebels looted the civilians, a feature which was absent in the pre-1857 warfare in India. On June 12, 1857, the situation was desperate for the rebels inside Delhi. They were left with only three days provisions.[12]

The emergence of people's war allowed the women in the India to come out of the purdah in order to direct public affairs. The participation of women in warfare of India before 1857 was very limited. In 1857 the most famous female warlord to emerge on the Indian side was Wajid Ali's beautiful, Begum Hazrat Mahal. In 1856, when Wajid Ali Shah was deposed by the British and left Lucknow for Kolkata, she remained in Awadh Independent of the

British and to place her Son Bijris Qadar on the throne. Hazrat Mahal though no battlefield commander was first grade strategist and good administrator.[13] She never surrendered and ultimately died in Nepal in 1879. [14]

Frequently, the fair sex did not get a fair deal from the men in arms. On March 12, 1858 Arthur Lang, a young engineer officer who participated in the Lucknow Campaign made the following entry in his journal," our men killed native women also".[15] The women played a very important role in strengthening morale , sustaining the home front and in vital non-combat jobs associated with armies',i.e providing food, munitions and other logistical back up. [16]

C.A Bayly writes that at least in some portions of India, the rebellion assumed the promotions of a patriotic revolt.[17] In mid - 19th century India, a complex compound between religion, caste and racial feelings gave rise to anti-gora log (white men) nationalism among large chunks of Hindus and Muslims in north India. The rebels to a great - extent relied on mobilizing the Indians on the issue of religion. The Civilian bureaucrat George Clurck was quite right in asserting before the peel commission which was set up in 1859 to ascertain the cause behind 1857 uprising) that religious fanaticism played an important role in the 1857 rebellion.[18] on June 6, 1837 a group of 50 sowars and 300 sepoys led by Bakshi Ali, the jail daroga, in Jhansi raised

the cry of 'deen ki jai' (victory of religion [19] when the 3rd Cavalry entered Delhi, they shouted 'Deen Deen'. And they were followed by excited Muslim mobs.[20] The Rani of Jhansi utilized the issue of religion for gaining recruits to her standard. The Rani used religious mendicants to fan the embers of religious hatrted among the people.[21]

On Jan 2, 1858, Nana's chief lieutenant issued the following proclamation from Kalpi : "My master Sreemunt Maharaja Peshwa Bahadur at the sacrifice of every ease and comfort as well as of his wealth, property etc. Has for the purpose of defending the relation both of the Hindus and Muslim prepared himself to slaughter the followers of Christ as they are the enemies of the faith

of the Muslims and Hindus. The said Maharaja has, by waging a war with the Christians,put several of them to the sword and has resolved not to refrain himself from killing them as long as breathes his living air, and to annihilate at once the people of this race now in India.[22] On September 19, 1857 at the Thana Bhaon about ten miles from Sham fee the rebels numbering 3,000 hosted the traditional green flag of the Muslims. The rebels projected the idea that they were fighting for Islam against the heretics. As a result, three dufadors and 13 Sowars (who were Muslim from Haryana) of the first Punjab Cavalry deserted.[23]

Rumour being the principal subaltern means of communication played an important role in mobilization

of the insurgents. The rumor was circulating among the men that white troops where killing Indian women in an act of vengeance.[24]

The Begum of Avadh deliberately spread rumours in order to encourage last ditch resistance among the rebels. The British were not free from the effect of rumour. In mid May 1857, a rumour circulated among the British inhabitants of Lucknow that the rebels were exposing the dead bodies of the British soldiers in the streets of Delhi. Instead of giving a Christian burial to dead white soldiers the British believed that the rebels were heaping abuse on their dead bodies.[25]

Among the white women, there

was an upsurge of raw emotions. On May 16, 1857 a British lady residing in Lucknow noted in her Journal. You can only rule these Asiatics by fear, if they are not afraid: they snap their fingers at you.

One the sources of rumour among the inhabitants of India was the Free Press. In 1857 the press, by modern day standard, sold showed some signs of behaving 'irresponsibly'. In May, 1857, the papers published in Persian language encouraged the Muslims inhabitants of the city to fight the Firangis'. One gets a glimpse of functioning of the English news papers from a letter written by a Scot from Punjab. In a letter dated May 30,1857 he writes," From the newspapers you will hear horried account of Delhi affair but the one half will never be

published. The brutes oiled over and set fire to one lady, killed children at the breast and 50 ladies and children who got into the palace of the king, who the rascal was put on the throne by us, and has received 12,000 sterling pounds a month of pension for years, were after remaining there five days stripped naked paraded through the crowded streets of the largest city in India in that state, under a burning sun and then killed with spears slowly and in cold-blood ladies and children who never knew what it was before to walk a mile.[26]

After the recapture of Lucknow in March 1858, the rebels spread all over North India and conducted sporadic low-level warfare against the British. This prolonged attritional struggle forced the

British to mobilize additional manpower. In Awadh, where the Anti-British bias among the high caste was most intense, the British raised several Levies mainly composed of low and middle castes. The British also mobilized "wild tribes" during the emergency. However the total number of low caste and tribes inducted in the irregular units of the British-Indian Army was much lower than the member of regular soldiers.

Violence inflicted by both the rebel and the British against each other and frequently on the non-combatants and civil society had an instrumental function. Infliction of large scale violence was necessary to destroy the financial and demographic potential of the enemy and also affect their morale. So, there was

nothing uniquely colonial about savagery against non-combatants displayed by the both British and the rebels during 1857-59. The brutalization of combat was due to ideological commitments on both sides. The rebels were motivated by a 'mix' of religion and caste pride that constituted a sort of pre-modern nationalism.

REFERENCES

1. Steven.D.Jackman "Shoulder to shoulder close control and old Prussian Drill" in German offensive Infantry tacties, 1871-1947, journal of Military history (henceforth JMH) Vol 68, no 1 (2004), p.79

2. Gautam Bhadra, 'Four Rebels of Eighteen fifty seven ' in Ranjit Guha (ed) Subaltern studies: wrinting on South Asian History and Society, Vol 4, Oxford University press, New Delhi, 1985., pp 273, 275

3. Rudranshu Mukhrjee, Awadh in Revolt: 1857-58, A study of 8 populer Resistance Oxford University press, New Delhi, 1984,p.66.

4. Roberst Henry Wallace Dunlop Service and adventure with the Khakee Ressalah or Merrut Volunteer Horse during the Mutinies of 1857-58, 1858, reprint, Legend Publication Allahabad, 1974p.150.

5. Kaye's and Malleson's History of the Indian mutiny of 1857-58 (ed) by col. Malleson, in 6 vols, vol 2, 1897-98, reprint, Westport, greenwood, conecticut, 1974,p.58.

6. The graham Indian Mutiny papers p 5.

7. Henry Mead, Thee Sepoy Repolt: its causes and conses and consequences 1857, reprint Gain Publishing, Delhi, 1986 p.132.

8. S A Rizvi (ed.) Freedom Struggle in Uttar Pradesh (henceforth PSUP), Source Material, Vol4, Eastern and Adjoining Districts Information Department, Lucknow, 1959,pp13, 23

9. Tapti Roy, Politics of a popular uprising, P.31

10. Huge Rose and the Central India Campaign 1858, selected and (ed) By Brian Robson, Army Records Society, Sutton, 2000, PP7-8

11. PJO Taylor (General Editor), A Companion to the Indain Mutiny of 1857, Oxford University Press, Delhi 1996 P10

12. Norman and Youngh, Delhi, P.55

13. Taylor (General Editor), companion to the Indian Mutiny, pp.8 42-44

14. PJO Taylor, what really happended during the Mutinty :A day by day accounts of the Major Events of 1857-59 in India, Oxford University Press, Delhi 1997pp3-4

15. Lahore to Lucknow : The Indian Mutiny Journal of Arthur Moffat Lang (ed) by David Bloomfiels, Leo Cooper, London, 1992p.162

16. For the role of women in western warfare see Martin Van Creveld, Men, Women and war, Cassell, London, 2001.

17. C A Byly, Empire and Information: Intelligence Gathering and Social Communication in India,

1780-1870, Foundations Boobs, New Delhi 1999, p.317

18. Report of the commissions appointed to enquire in to the organization of the Indian Aermy: together with the Minutes of Evidences and Appendix, 1859 hereafter Peel Committee, cd 2515, Nai, p.38

19. Tapti Roy, Politics of A POPULAR Uprising p.30

20. Kaye's and Malleson's History of the Indian Mutiny vol 2, p.58

21. Forest (ed), Selection forms the letters, Dispatched and other State papers, Vol 4, p.3

22. Huge Rose and the Central India Campaign,p.30

23. History of the first Punjab Cavalry, the Civil and Military Gazatte Press, Lahore, 1887,pp 27-28

24. Ist Punjab Cavalry, pp 7-28

25. A lady's diary of the Seige of Lucknow, p.8

26. John Chalmers p.100

ISBN: 978-81-951568-9-4

CONTRIBUTION OF FEARLESS ENGLISH AND VERNACULAR JOURNALISM IN INDIAN FREEDOM STRUGGLE AND SOCIAL JUSTICE

Dr. Prashant Dwivedi
Department of English
Associate Professor
Dr. B.R.A. Govt. Girls PG College Fatehpur

The press and journalism have the ability to bring about a change in thought and environment. ... be it the first revolution

of independence in 1857 or the complete independence movement after that, which got independence in 1947. The Indian press has played a dominant role in both these major movements. After independence on 15th August 1947, the whole scenario of Indian thinking of changed, which was to happen. The ended struggle for independence caught the direction of new awakening and new construction. Obviously, journalism itself had to accept this challenge. Journalism handled this responsibility very well and made all the questions raised during the freedom struggle-social, economic, cultural, political etc., made them the centre of contemplation in the context of its civilization, tradition and modernity.

INTRODUCTION

On 29th January 1780, James Augustan Hickey brought out the first Indian newspaper, the Bengal Gazette in English from Calcutta. Its motto was - Open to all yet not influenced by anyone. Hickey had to become the wrath of the East India Company for his bold conduct and sticking to his discretion. Hickey was rewarded for his harsh criticism of the Hastings government in the form of prison torture. Hickey declared his own purpose - I enjoy binding my body to the freedom of my mind and spirit. The newspaper began with a declaration of rebellion. Hickey was the first journalist in India who fought with the British government for the freedom of the press.

CONTINUATION OF MOVEMENT WITH ENGLISH DAILIES BEFORE 1900

The hickey tradition was enriched by William Humani, a North American native. The Bengal General, published in 1765, that was pro-government, began to criticize the government after Humani became editor in 1791. Terrified by Humani's aggressive posture, the government expelled him from India. James Buckingham published The Calcutta General of English from Calcutta on 2 October 1818. He was a fierce critic of government policies. Pandit Ambika Prasad wrote that the freedom and generosity of this newspaper was not seen in any paper before. The Calcutta General had left

behind the Anglo-Indian newspapers of that time in propaganda. In two years, the membership of this newspaper, worth one rupee, had exceeded one thousand. James Buckingham was considered a symbol of freedom of the press. He was deported to the country in 1823. However, going to England, he took out the Oriental Herald, in which he continued to campaign against Indian problems and the continuation of the rule of India in the hands of the Company.

After the Indian Council Act of 1961, the political consciousness that emerged in the upper strata of society increased the number of newspapers in both Indian and non-Indian languages. Pioneer at Allahabad in 1865, the Times

of India in Bombay in 1861, the Madras Mail in 1868, the Calcutta Statesman in 1875 and the Civil and Military Gazetteer at Lahore in 1876. All these English dailies continued during the British rule. The Times of India often supported the policies of the British government. Pioneer favoured the landowner and moneylender elements and the Madras Mail favoured the European commercial community. The Statesman criticized both the government and the Indian nationalists. The Civil and Military Gazette was a paper of British orthodox views. Famous newspapers like Statesman, Times of India Civil and Military Gazette Pioneer and Madras Mail supported the policies and program of the British government and governance.

Amrit Bazar Patrika, Bombay Chronicle, Bombay Sentinel,Hindustan Times,Hindustan Standard,Free Press General, National Herald, National Kal Lakshya was a reputed nationalist daily and weekly paper published in English. The Hindu leader Indian Social Reformer Modern Review gave expression to the spirit of liberal nationalism. The policies and programs of the Indian National Congress were given critical support by the national newspapers and liberal papers. Dawn was a supporter of the ideas of the Muslim League. Student organizations of the country had their own papers such as Student and Saath.

Surendranath Banerjee, the national leader of India, published and edited the Bengali (English) paper in 1874. He was

accused of disobedience to the court for an article printed in it. He was sentenced to two months' imprisonment. Bengali propagated the ideas of the liberal party of Indian political ideology. On the advice of Surendranath Banerjee, Dayal Singh Majithia founded the English daily Tribune in Lahore in 1877. This was an influential newspaper of the liberal national ideology of Punjab. During the administration of Lord Lytton, public sentiments were hurt due to some government work, which increased political discontent and increased the number of newspapers. In 1878, Veer Radhvachari and other patriotic Indians founded the English Weekly 'Hindu' in Madras. From 1889 it got the status of a daily. Hindu's outlook was liberal.

Nonetheless, it criticized the politics of the Indian National Congress as well as supported it. National consciousness also spread in the field of social reform. The Indian Social Reformer English weekly was established in Bombay in 1890. Its main goal was social reform. In 1899, Satchidanand Sinha founded the English monthly Hindustan Review. The political and ideological outlook of this paper was liberal.

AFTER 1900

In 1900 G.A. Nateshan started the publication of Indian Review from Madras and in 1907 Ramanand Chatterjee started the publication of Modern Review from Calcutta. The Modern Review has proved to be the country's

most popular English monthly. In this, articles were published on social, political, historical and scientific subjects and news of work was also done on the topic of international events. It often supported the right wing in the Indian National Congress. In 1913, under the editorship of B. G. Harniman, Firozeshah Mehta brought out the Bombay Chronicle. In 1918, the Servants of India Society, under the editorship of Srinivasa Shastri, started bringing out its mouthpiece, the Servants of India. It analysed and presented solutions to the problems of the country from a liberal national perspective. It ceased publication in 1939.

In 1919, Gandhi edited 'Young India' and through it propagated his political philosophy, programs and

policies. After 1933, he also started publishing 'Harijan' (weekly published in many languages). Pandit Motilal Nehru started the publication of 'Independent' (English daily) from Allahabad in 1919. The leaders of the Swaraj Party started the publication of 'Hindustan Times' (English daily) in Delhi in 1922 under the editorship of KM Pannekar to promote the program of the party. It was during this period that the publication of the English nationalist daily People was started from Lahore as a result of Lala Lajpat Rai's efforts.

After 1923, gradually socialist, communist ideas started spreading in India. The Marathi weekly 'Kranti' was a mouthpiece of the Workers and Peasant Party of India. The Spark and New Spark

(English weekly) were published, respectively, under the editorship of MG Desai and Lester Hutchinson of the Meerut Conspiracy Case. Their aim was to propagate Marxism and to provide support to the independent political and economic struggles of national independence and peasant workers. Between 1930 and 1939, the workers' peasant movements expanded and grew in strength. Socialist communist ideas developed among the youth of Congress. The Congress Socialist Party thus published the Congress Socialist in the form of an official paper. The major papers of the Communists were the National Front and later the People's War. These were both English weekly papers. MN Roy's views were different from

official communism. He formed his own party whose mouthpiece was Independent India.

JOURNALISM SHATTERING LANGUAGE BARRIER

Raja Rammohan Roy published the Bengali paper 'Samvad Kaumudi' from Calcutta in 1821. In 1822, a Persian-language letter, 'Mirat-ul-Akhbar' and English-language magazine, was brought out. Raja Rammohan Roy brought out the Bangla Herald in English. In 1829 from Calcutta, 'Bangdoot' was published which was published in Bangla Persian Hindi and English languages. Samvad Kaumudi and Mirat-ul-Akhbar were the first publications of a clear progressive national and democratic trend in India.

These were the main papers for the promotion of social reform and critical debate on religious-philosophical problems. The basic spirit behind the publication of all these papers of Raja Rammohan Roy was only to present such intellectual essays before the public which could increase their experience and prove helpful in social progress. These papers aimed at providing proper introduction to the rulers about the conditions of the common people and acquainting common people with the legal system established by their rulers so that governance can give maximum convenience to the people. Journalism sought that people should be aware of the means by which they could get protection from the rulers and their just

demands could be fulfilled. In December 1823, Raja Ram Mohan Roy wrote a letter to Lord Amherst requesting him to make arrangements for the spread of English education so that by adopting English, the Indians could become aware of the activities of the world and understand the importance of liberation.

Vishnu Shastri Chiplanakar and Lokmanya Tilak together brought out 'Kesari' in Marathi and 'Maratha' weekly papers in English from 1 January 1881. Tilak and his companions said in the announcement of the publication of the paper – "It is our firm determination that we will discuss every subject objectively and what will be true from our point of view. Undoubtedly, the tendency of sycophancy in British pride is increasing

in India today. All honest people will accept that this trend is undesirable and against the interest of the public. The articles which will be published in this proposed newspaper (Kesari) will be according to their name." Kesari and Maratha spread public consciousness in Maharashtra and made a golden contribution in the history of the national freedom movement. They taught the Indian people the lesson of being courageous, fearless and devoted to the country by rising from the tendency of oppressed and submissive side. Only one thing used to emerge – 'Swarajya is my birth-right'. In 1896 there was a severe famine in which thousands of people died. At this time an epidemic of plague broke out in Bombay. The British

government called in the army to handle the situation. The army started conducting house-to-house searches which created anger among the public. Tilak, incensed by this arbitrary behaviour and carelessness, strongly criticized the government through Kesari. He was sentenced to 18 months imprisonment for his article in Kesari.

Gandhiji published the Indian Opinion weekly paper on 4 June 1903. From whose single issue six columns were published in English, Hindi, Tamil, Gujarati languages. At that time Gandhiji lived in South Africa. He started publication of Young India in English and Navjeevan in Hindi-Gujarati from July 1919. Through these papers, he conveyed his ideas to the public. His

personality had cast a spell on the public. People were ready to die on his voice. Mahatma Gandhi's thoughts were published every week in these papers. However, they were closed due to lack of public opinion due to the laws passed by the British rule. Later, he published Harijan in English and Harijan Sevak in Hindi and Haribandhu in Gujarati and continued to print these newspapers till independence.

In 1868, a Bengali weekly, Amrit Bazar Patrika was started with the joint effort of Hemendra Kumar Ghosh, Shishir Kumar Ghosh and Motilal Ghosh from the small village of Amrit Bazar in Bengal. Later from Calcutta it began to be published in both Bengali and English languages. It was made a fully English

weekly to avoid the Vernacular Press Act of 1878. It started publication in 1891 as an English daily. Amrit Bazar Patrika propagated strong national ideas and has been a very popular nationalist paper. This paper also got suppressed due to bitter criticism of government policies. Many of its editors also faced prison sentences. When the British government fraudulently removed Raja Pratap Singh from the throne in Kashmir and wanted to take over Kashmir, this magazine protested so fiercely that the government had to return the kingdom to Raja Pratap Singh.

Azimullah Khan, the leading leader of the freedom movement, started the 'Payame Azadi Patra' from Delhi on 8th February 1857. Like Sholay, with his

sharp and stunning voice, he filled the feeling of freedom in the public. Frightened by this paper, which survived for a short time, the British government left no stone unturned to close it. The British government was so terrified by the Payame Azadi that anyone who found a copy of this letter was shot as a traitor and a rebel. Others had to face government torture. Its copies were confiscated, yet it continued to spread awareness. Jagdish Prasad Chaturvedi has written, "As far as the revolutionary movement is concerned, the revolutionary movement of India started with newspapers not with guns and bombs." Varindra Ghosh's paper Yugantar was indeed an epoch-making paper. No one could know who was the

editor of this letter. Many persons declared themselves the editors of the paper from time to time and went to jail. The paper was closed by enacting a repressive law. Chief Justice Sir Lawrence Jackson wrote about the ideology of this Paper, "Each line of it drips malice against the British. In every word the excitement for revolution is reflected." In an issue of Yugantar, it was also told how to make a bomb. Its value was on the last issue published in 1909 - Firangadi Kancha Matha (Firangi's immediately severed head).

MULTIPLE LANGUAGE NEWSPAPERS

Both Hindus and Muslims had understood the danger of communalism.

They had known known that communalism was an effective weapon of the imperialists. The fight against communal disharmony was intensified through journalism. In view of the danger of linguistic separatism, papers were published in more than one language. In which the number of bilingual papers was great.

Hindi, Urdu, Sanskrit, Bangla Papers

Mazharul Sarur, Bharatpur 1850; Payame Azadi, Delhi 1857; Gyan Pradayini, Lahore 1866; Jabalpur News, Prayag 1868; Sarishte Taleem, Lucknow 1883; Radputana Gazetteer, Ajmer 1884; Bundelkhand Newspaper, Lalitpur 1870;

Sarvahit Karak, Agra 1865; Khair Khwahe Hind, Mirzapur 1865; Jagat Samachar, Prayag 1868; Jagat Aashna, Agra 1873; Hindustani, Lucknow 1883; Parcha Dharmsabha Farrukhabad 1889; News Sudha Varsha, Hindi and Bengali, Calcutta 1854; Hindi Prakash, Hindi Urdu Gurmukhi, Amritsar 1873; Maryada Paripati Samachar, Sanskrit, Hindi, Agra 1873. In 1846, the Indian San, published from Calcutta, also came out in five languages like Hindu Harold, Hindi, Persian, English, Bengali and Urdu. Nagpur Gazette was published in Hindi, Urdu, Marathi from Nagpur in 1870. Bangdoot Bangla was published in Persian Hindi and English languages.

Gujarati Papers

Fardoon ji Marjban, the pioneer of the indigenous press in Bombay, started Bombay Samachar in Gujarati in 1822, which still comes out in the form of a daily paper. In 1851, two more Gujarati papers Rast Goftar and Akhbare Saudagar were established in Bombay. Dadabhai Naoroji edited Rast Goftar. This was an influential newspaper in the Gujarati language. In 1831, PM Motibala from Bombay started the Gujarati paper Jame Jamshed.

Papers in Marathi

Mumbai Samachar, the first Marathi paper was started in 1840 under the editing of Suryaji Krishnaji. In 1842,

Krishnaji Timbakji Ranade published Gyan Prakash Patra from Poona. In 1879 -80, Marathi weekly paper Subodh Sindhu from Burharanpur was published by Lakshman Anant Prayagi. Even Hindi newspapers and magazines in central India were developed only with the help of Marathi letters.

CONCLUSION

The vernacular press saw various difficulties and hurdles in its way but not stopped its political awareness and freedom struggle until got independence for India in 1947 from the British Imperialism. With the increasing number of newspapers, the government became accountable. Therefore, it brought into action several acts in order to suppress

the press. Freedom of the press was of utmost importance as it was a powerful tool to propagate political ideas. The Government came up with the Vernacular Press Act, 1878 in order to control seditious writing and strong public opinion which was spreading disaffection towards the then Government. Section 124A was already in existence to tackle any form of sedition but the introduction of critical acts like the Vernacular Press Act led to a further restriction on freedom of press and freedom of speech in British India. Nonetheless, various difficulties and hurdles were overcome by the vernacular press but it did not stop it to propagate freedom struggle and political awareness until India got Independence in 1947.

LIMITATIONS OF THE STUDY

Limitation of the study is that of statistical data. This research paper was based on largely qualitative and theoretical research methodologies. Without survey this research paper did not, for the most part, yield statistically significant results.

FUTURE RESEARCH

The limitations of this research paper points towards topics to be addressed in the future. Additional tools should be designed to ensure exact findings about English journalism and vernacular press and their role in freedom struggle. Quality research should be done and it must aim towards devising correct methodology and proper survey.

REFERENCES

1. “5 Fearless Journalists Who Rose against the British Raj during the Freedom Struggle Ji.” The Better India, 24 Jan. 2018, https://www.thebetterindia.com/128932/journalists-freedom-fighters-british-raj/.

2. The Contribution of Journalism and Communication towards ... https://arcjournals.org/pdfs/ijmjmc/v7-i2/1.pdf.

3. “The Contribution of Journalism and Communication towards the Attainment of Indian Independence – A Critical Review.” International Journal of Media, Journalism and Mass Communications, vol. 7, no. 2, 2021, https://doi.org/10.20431/2454-9479.0702001.

4. Eswar, Clement. Indian Freedom Struggle: Since the First War of Independence, 1857-1947. Lily Publications, 2006.

5. “History of Indian Journalism Linked to India's Freedom Struggle: Pranab Mukherjee.” The Economic Times, https://economictimes.indiatimes.com/news/politics-

and-nation/History-of-Indian-journalism-linked
-to-Indias-freedom-struggle-Pranab-Mukherjee/
articleshow/22189796.cms.

6. Kaur, Gagandeep. “Role of Journalism and Indian Freedom Movement.” International Journal of Current Research and Academic Review, vol. 6, no. 3, 2018, pp. 16–19., https://doi.org/10.20546/ijcrar.2018.603.004.

7. Krishna, B. Indian Freedom Struggle: The Pathfinders: From Surendranath Banerjea to Gandhi. Manohar, 2002.

8. Pamvāra Harapāla Simha. Hindī Patrakāritā Aura rāshtrīya āndolana. Javāhara Pustakālaya, 2008.

9. “Vernacular Press Act and Role of Press in India's Struggle for Freedom.” Vernacular Press Act and Role of Press in India's Struggle for Freedom, Blogger, 17 Sept. 2013, https://suchak-indian.blogspot.com/2013/09/vernacular-press-act-and-role-of-press.html.

ISBN: 978-81-951568-9-4

KANTHAPURA: A REAL DEPICTION OF GANDHIAN PHILOSOPHY AND THOUGHT

Santosh Kumar

(Assistant Professor, Deptt. of English)

Dr. Ambedkar Government Post Graduate College

Unchahar, Raebareli

It is right to say that Indian Writing in English discusses about the social, political, and religious problems of India as Gandhiji discusses about the distressed and exploited lower caste in

Hindu society. Through his discussion, he aimed to eliminate scarcity, caste discrimination, and untouchability from Indian society. My present article exposes importantly the effect of Mahatma Gandhi on the village of Kanthapura. One may see that Kanthapura is the microcosm of the Indian customary culture and what occurred in Kanthapura was also simultaneously occurring in India during the period from1919-1930. It is not considered only a radical novel, but also a novel which deals with socio-religious and financial revolution during the battle for individuality. In the novel Kanthapura, one may see that Moorthy tracks Gandhi's principle and thought of non-violence, Satyagraha. He also follows Gandhian opinions on untouchability and

casteism etc. Therefore, the present novel can be considered as Gandhi-epic. We can see that it is Gandhi who awakened national wakening in Indians with his non -violent fight for liberty movement which was supported by disobedience and civil disobedience movement in Kanthapura village. One may see that Gandhi's powerful temperament ahishis thought is sensed far and wide in the novel. It is another matter that Gandhi doesn't perform in this novel individually, but the plot of the novel rotates around his philosophy.

We cannot forget the contribution of Gandhi ji, who made a tremendous effort, to get freedom from British clutches. His thought planned a mass-based radical and social upheaval

throughout 1920 to 1940. The arrival of Gandhian beliefs through the countrywide Gandhian activities made a particularly profound influence on fictional novelists of the time, particularly those scripts in English. The period of 1930s is also noticeable by the arrival of the three innovative novelists Mulk Raj Anand, R.K. Narayan and Raja Rao whose contribution to Indian writing in English has been gigantic. Gandhian philosophy is demonstrated in diverse practices in their novels.

Gandhian thoughts and philosophy delivered them a national background and the revelation of a society on the interchange to radical liberty and socio-economic rebuilding. Knowledgeably and mystically, it encouraged them to search

for a new individuality, a subtle combination of the customary and the contemporary. One may see that in the 1930s the influence of Gandhi and his philosophy was massive. It was Gandhi ji who effected millions of people in India in changing steps. It is stimulating to realize how Gandhi ji used conviction and vindicated radical and social accomplishment on "appropriate philosophical surroundings". One may get that Gandhi ji made action part of man's dharma relating it to the thinking of Karma yoga of the 'Gita'. According to Gandhi ji, man can influence the philosophical world only through his action. It means that we should act instead of speaking. Here, one may see that it is this sanctity of Gandhian beliefe,

which highlighted the habituation of mortal attention through device of the undesirable sides of one's self, primary to deliverance and power that fascinated Raja Rao. Now it is from this viewpoint that Rao observes Gandhiji and it is in these relations only that his novels record the influence of Gandhian beliefs . Raja Rao is called "a child of Gandhian age.' He was greatly influenced by the ideology of the Gandhi ji. In 'Kanthapura', Raja Rao gives microscopic picture of the Indian freedom movement during 1930s. We can see that in this novel the period between Gandhi ji's Dandi March in 1930 to Gandhi-Irwin pact in 1931 has been covered. It can be understood that the influence of Gandhian belief on the village of India itself is the main topic of

this novel. In this regard, one may find Iyenger's remark justified as he concludes the theme "Gandhi and our village".

It is clear that Raja Rao wisely discovers the Gandhian principles of amorous one's foes, non-violence and elimination of caste based discrimination in this novel. 'Kanthapura', is Rao's first novel in which he endeavored an assessment of the struggles made by the Indians under the guidance of Gandhi ji to conquer radical and social liberty. It can be imagined that hanging between hope and dejection, people of even ambiguous places were making struggles to eliminate deficiency, illiteracy and oppression. Inspired by this Raja Rao, a thoughtful writer to pen this novel. It is surprising that even such an unfamiliar

village named as Kanthapura, there one may see that the wave of national ismbrushed hard taking in its fold males, women folk and youngsters. It can be said rightly that Mahatma Gandhi had transformed the whole nation into a group of non-violent liberty – troops. Raja Rao as a novelist favors to deal with him through a local figure who seems to be his demonstrative.

In this way, we can see that Moorthy, the protagonist of the novel does the same wonder in Kanthapura. That's why he has been regarded as Gandhiji's exact devotee in Kanthapura. Therefore People of Kanthapura use to say, "He is our Gandhi". He is the saint of the village. He is a social campaigner, a satyagrahi, and the forerunner of the non

-violent program in Kanthapura. As a consequence of it, the unaware, uneducated people of the village fall into the liberty fight with incredible zeal and make utmostmartyrs for the abundantroot.

It is quite right to say that Mahatma Gandhi's movement was not only radical but it is also social. Because it has three parts such as spiritual, communal and financial. All these three parts are revealed in the actions carried out in Kanthapura. We can see that it is Gandhiji who required his admirers to have a stable belief in God and exercise the weapons of truth and non-violence. Therefore, it is observed that the people of Kanthapura are intensely spiritual and persist non-violently in the face of the

worst police massacres. We can observe that Gandhi ji's communal programmes included Harijan uplift, liberation of women folk and elimination of illiteracy. In this particular novel, we see that the people of Kanthapura are extremely spiritual as a result all their doings get inspired with conviction. Actually, the first important proposal that they should track Gandhiji and battle against British came from a Harikatha of Jayaramchar in the Kanthapurishwari temple. The foundation of cooperative determination which later took the form of liberty movement was the establishment of this temple. It was Moorthy who proposed that they should construct a temple. Afterwards, the boys construct the temple by their individual labors and it is blessed

by Bhatt, the first Brahmin. As a result of it, there occur spiritual festivals, harikathas and hyms conducted by Moorthy and his friends in the novel. It is fascinating to note that Gandhian beliefs reach the villagers through Harikathas recited by Jayaramachar. He suggested that Gandhiji's three-fold programme was linked to the three eyes of Lord Shiva. If we throw light on the life of Gandh ji we can imagine the eradication of British rule in the same way Krishna and Rama eradicated the Kaliya and Ravana (British rule) respectively and liberated Sita (Bharata). In this way we can say that the tradition of Harikathas was the initiation of effort toward liberty in Kanthapura. Understanding the whole matter, the Brithsh terminated Jayaramachar and

allowed the posting of Bade Khan in Kanthapura. Moorthy like Gandhi orates the messages of comradeship, fairness, and elimination of caste discrimination. It is seen that the village is Hindu and stratified on accustomed caste-practice. There are differences between the Upper caste Brahmins and the Lower caste non-Brahmins. One may see a strong bay between these peoples. We can see that there is almost no social communication beyond the inevitable economic relations. Moorthy attempts to eliminate caste discrimination. Therefore he approaches to Kanthapura with the message of the Gandhi ji and says "……there, is neither caste nor clan nor family…..One should not marry early, one should allow widows to take husbands and Brahmin might

marry a Pariah and a Pariah a Brahmin."

Gandhi ji confronted the foundation of Hindu social construction i.e. the caste-system and that's why Brahmins were cautious of him because they understand that their devolved benefits were always at stake. We can see that Bhatt, a Brahman stood against Gandhiji's Bhajans and other social programmes because he realized that he could create more money by capturing property of the deprived in the form of lands under the British regime. That's why he gave them loans on their lands. For this purpose he tries his best to puzzle the unfamiliar inhabitants as he says that Gandhiji's business "is Nothing but weaving coarse hand-made cloth, not fit for a mop, and bellowing out Bhajans and

Bhajans, and mixing with the Pariahs". (Kanthapura, p.42). The whole vision of Gandhiji can be seen in Moorthy's vision who exhibited in his actions to convey harmony, fairness and self-esteem. This is the reason why he considers constructing a thousand-pillared temple, lodging a pariah and a priest. It can be seen as he says "Whether Brahmin or Bangle-seller, Pariah or priest, we are all one, one as the mustard seed in a sack of mustard seeds, equal in shape and hue and all….We are yoked to the same plough." Nay Moorthy also appeals them to be silent as he again says: "and the Brahmin heart and the weaver heart and pariah heart seemed to beat one beat of Shiva dancing." But when Gandhiji was arrested by the British and when the conch is carried, people

come “… the pariahs and the weavers and the potters all seemed to feel they were of one caste, one breath.” And when Moorthy proclaims as “…..there shall be neither Brahmin nor Pariah.” It can be seen how Ratna conveys the woman colleagues to such a point where concerns of caste and colour dissolve. As it is observed in the statments: “We are some secret brotherhood in some Himalayan cave.” It is Rangamma who sees him as the saint of Kanthapura and says,"Moorthy, the good, Moorthy, the religious and Moorthy, the noble. We can also see that Advocate Shankar discovers no enhanced Gandhist than Moorthy. While goldsmith Nanjundia determines moral potentials in him: “Our Moorthy is like gold-the more you heat it the purer it

comes out from the crucible.”

We can say that Moorthy is like a revolution persuading all the settlements. It is because of his nobleness of heart, truthfulness of action, devotion to the nation’s cause and social distresses; all people are brushed by him. If Range Gowda had joined him parting with his Patelship, like advocate Shankar who follows his act in Gandhian approach. So it is says that his decent influence upon Rangamma and Ratna, both decent savages. Still there are pariahs like Rachanna, Madanna, and a crowd of coolies who have come down to the ground of coffee domain traditional from the catchment area of Godavari in Andhra Pradesh. Meantime, Moorthy continued his teaching programme at the

Pariah night school to circulate Gandhiji's philosophies. He kept on teaching the Pariahs. He also visited the Sheffington Coffee Estate to explain the coolies the art of knitting. Apart from this he demonstrate esthem letters, alphabets, grammar, arithmetic and Hindi. Moorthy opines that Hindi must be the national language and delightedly explains it to others. As a supporter of Gandhian philosophy, it is Raja Rao who trusts that "the future of the world is in Gandhism." In this way we see that Moorthy attains divine command in his very first get-together with Gandhi, who predominantly gives training to him in his radically liberal philosophy. It can be seen as he says, "There is in it something of the silent communion of the ancient

books."(Kanthapura,52) He sacredly comes under the impact of Gandhian philosophy and determines: "There is but one force in life and that is truth, and there is but one love on life and that is the love of mankind, and there is but one God in life and that is the god of all". (52 -53). We can see the similar point of view in Jayaramchar who also pronounces the philosophy of Gandhi. As he says: "Fight, says he, but harms no soul. Love all, says he, Hindu, Mohammedan, Christian or Pariah, for all are equal before God. Don't be attached to riches, says he, for riches create passions, and passions create attachment and attachment hides the face of truth. Truth must you tell, he says, for Truth is God and, verily, it is the only God I know."[22]

Therefore, to conclude we can say that Raja Rao's Kanthapura is a real depiction of Gandhian philosophy and thoughts. It can be justified through the representation of Moorthy, Jayaramachar, and other chatracters who were showing their staunch belief in Gandhian philosoohy and thoughts. Raja Rao's Kanthapura characterizes the Gandhian philosophy of non-violence and the elimination of untouchability.

REFERENCES

1. D. R. Shah, K. Paresh's Gandhian Philosophy in Raja Rao' Kanthapura. Pune research. Vol 3 issue 5. Sept. October 2017. Pdf.

2. Jha, Rama. Gandhian thought and Indo-Anglian Novelists. Delhi; Chanakya Publications, 1983. Pdf.

3. Rao, Raja. Kanthapura. Delhi: Oxford

Paperbacks, 1989. Print.

4. Rao, Raja. Kanthapura. Orient Paperback, Delhi, 1972. Print.

5. Mishra, Anil Dutta: (Ed.) Gandhism after Gandhi. New Delhi; Mittal Publications, 1999.Pdf.

6. Mukherjee, Meenakshi. Realism and Reality, The novel and Society in India. Delhi: Oxford University Press, 1985. Pdf.

7. Parmeswarm, Uma. A Study of Representative Indo-English Novelists. New Delhi: Vikas Publishing House, 1. Pdf

8. Saxena, K.S.: (Ed.) Gandhi Centenary Papers.Vol.-4 Social and Educational Philosophy of Gandhi. Bhopal: Council of Oriental Research.

ISBN: 978-81-951568-9-4

INDIAN INDEPENDENCE AND THE WOMAN QUESTION: TRACING THE TRAJECTORY OF INDIAN FEMINISM THROUGH THE LENS OF LITERATURE

Deeksha Sharma
Assistant Professor
Department of English
Dr. Ambedkar Government P.G. College, Unchahar, Raebareli

Just when the cry for Independence pealed throughout India, the woman question also found itself hurled on the centre stage of events. A

simultaneous cry for freedom from the stifling shackles of patriarchy deepened and Indian feminism came to life. The first and the second wave of Indian Feminism saw light during the Independence era. Closely knit with nationalism, many women writers also stood for the country. Issues of motherhood and motherland intersected in the lives of women. The paper attempts to trace the development of Indian feminism through the lens of the writings of these early feminists.

The dawn of India's Independence tore through the thick night of Imperialism after an overstretched grapple between the Self and the Other, the Ruler and the Ruled and the Self and the Self. But the face-off wasn't easy. It

was an era of political, spiritual, social pandemonium and unrest nudging on a whole country to a dawn of freedom and transformation. As the cry for Independence became louder, literature became a potent tool in the hands of freedom fighters and activists who used it to represent the volatile ideas of the day and nationalism became a dominant tone.

Nationalism can be broadly understood as a feeling of loyalty towards one's own nation. It is this question of what is a nation? that still confounds many scholars. Nation could be mobilised on geographical, cultural, racial, religious or even language-based factors and yet transcend the boundaries of these factors. Perhaps it is best to define nation, just as Benedict Anderson does, as an imagined

community. It is an identity marker.

To mobilise a whole country on the idea of nation was a herculean task and from the seeds of nationalism sprang the tree of Indian feminism in the nineteenth century, the historical trajectory of which can be traced by a synchronic study of the women’s literature written during the era of independence. The foundation for women's rights was laid in the nineteenth-century social-reform discourse, which contained both nationalist aspirations and feminist responses to patriarchy.

Women’s rights were first brought to light by elite, literate men and scholars who had the distinct imprint of western movement of Enlightenment on their minds and a knowledge of one’s own

culture and scriptures. Looking at the condition of women from the lens of these liberating western ideologies filtered through a knowledge of one's own scriptures, these men found the country to have fallen from the grace of its golden age and turned to what K. N. Panikkar calls 'cultural defence.' These reformers vehemently criticised the inane practices of child marriage, sati, women's illiteracy, polygamy, widow abuse and widow celibacy.

One of the first Bengali reformers was Ram Mohan Roy, who denounced polygamy and sati through his Amitya Sabha and Brahmo Samaj in 1828. Ishwarchandra Vidyasagar, petitioned to legalize widow remarriage in Bengal in the 1850s. Vishnusastri Pandit, D. K.

Karve, and Viresalingam Pantulu started widows' remarriage associations in Bombay and Madras in the 1870s and 1880s. The Prārthana Samaj in 1867 and Ārya Samāj propogated women's education and criticized misogynistic marriage customs as detrimental to female health. In 1896, Justice M. G. Ranade and his wife Ramabai started the Ladies Social Conference, a secular forum within the Indian National Congress. B. M. Malabari's tract on child brides and widow abuse published in 1884 made the English break out in cold sweat and in 1891 the British enacted the Scoble Bill, raising the age of married girls for consensual sex from ten to twelve in India. Liberal Hindus like Raghunatha Rao, M. G. Ranade, and Gopal Krishna

Gokhale supported such legal reforms while Bal Gangadhar Tilak opposed colonial intervention in Hindu customs.

Soon enough, women showed up on the political and intellectual fronts to voice their opinions against stifling traditions of patriarchy. Pioneer among them was Pandita Ramabai Saraswati who put women on the intellectual front by becoming an adept Sanskrit scholar, thus denouncing the long-perpetuated idea of women's intellectual inferiority. She founded the first Indian feminist organisation called Arya Mahila Sabha in 1881.Fiercely independent, her book Stree Dharma Niti was written to finance her studies in England. Although looking back at it, the treatise seems like a reconstruction of reinforced patriarchal

ideas reproduced in a refreshed vocabulary for it proposes means and ways of becoming a better woman, yet there are definite deviations from the conventional thought process in parts where she asserts that the woman is more than the roles imposed on her by the society. She married outside her caste, denounced caste system, voiced against the ill-treatment of widows and advocated for education of women. Alienated from her own culture and religion, she converted to Christianity. Perhaps her greatest fete lies in reclaiming authority to make her own decisions.

Angered by death trial awarded to widow Vijaylaxmi for having killed her own child by the sessions court which was later revoked to transportation,

Tarabai Shinde wrote the famous treatise titled Stri Purush Tulana in 1882. Tarabai Shinde recognised the root of this act in a widespread malaise of the burden of chastity heaped on women. Rampant at the time were articles that focused on proposing ideals of womanhood linking the woman to domestic sphere. Meredith Borthwick notes that the idea of a 'bhadramahila', which was a blend of brahmanic ideal women and Victorian women is evident in the expectation from an ideal woman who is an angel in the house and who helps his husband in work at the same time, was colouring the notion of woman in colonial India. Shinde takes to paper to expose the hypocrisy and duplicitously deceiving nature inherent in the ideals like

‘stridharma’ and ‘pativrata’ that are all one -sided. She argues that the burden of heaving all these ideas and ideals to its end has been put on the woman while men roam freely without any duty pinned to them by custom, tradition or religion. In the Introduction to her A Comparison Between Women and Men, translated into English by Rosalind O’ Hanlin, she explicitly conveys the purpose of her writing:

God brought this amazing universe into being, and he it was also who created men and women both. So is it true that only women’s bodies are home to all kinds of human vices? Or have men got just the same faults as we find in women? I wanted this to be shown clearly and that’s the reason I’ve written this small book to defend the honour of all my sister countrywomen.(pg.75)

At another level, the treatise aims at

exposing the habits of men like mindlessly aping the western standards of fashion that were costing the cottage-industries and by extension the nation terribly. Unconsciously the writer had inevitably linked the degrading status of woman with the detrimental state of Nation. This notion of the Nation as a woman or goddess has been under a lot of fire among the intelligentsia of the society in recent times. Whatever might be the fallout today of such a use, one cannot deny that the cultural and metaphoric symbol of Nation as a goddess and woman was responsible for mobilising a greater number of people together to fight for the cause of nation. They identified with the nation only by forging a filial relation with it. Today, this

notion has run its expiry and might need revision for it has metaphoric culturally misogynistic overtones to it.

Scholars like Gopal Guru and Sharmila Rege recognise the significant role played by Dalit feminism in furthering the interests and rights of women. In "Dalit Women Talk Differently," Guru opines that the Dalit women are doubly marginalised and so their predicament is different: "(...)dalit men are reproducing the same mechanisms against their women which their high caste adversaries had used to dominate them."(pg.2549) One such torch bearer of Dalit feminism was Savitribai Phule who radically advocated the right to education for Dalit women. She was the first Indian woman teacher,

who along with her husband, Jyotirao Phule established an indigenous school in Pune. She likened the power of education to the power of Tritiya Ratna, the third eye or the power of discrimination. She saw education as a spiritual tool that could help the wielder to dismantle hypocritic traditions unearthing the truth behind it. She advocated the study of English language to free oneself of the shackles of insipid tradition. In Kavya Phule she writes:

Cast away the yoke of custom

Prise open the doors of tradition

Learn to read and write

Good times have come.... mother English has arrived.

(pg. 82)

Her writings demonstrate the imprint of folk songs, bhakti, poetry and

the shayari. Ideas of liberty, equality and humanism were propagated through her writings.

In one of the poems named 'Agyan' Savitribai paints ignorance as enemy and education as the liberator:

Just One enemy do we have today

Let's thrash him and drive him away

The name of this enemy I shall tell

Listen carefully, harkens well Ignorance! (pg. 81)

She likened a person without education to an animal. She advocated the cultivation of self-reliance, confidence and right discrimination through education in women:

We become animal without wisdom,

Sit idle no more, go, get education

End misery of the oppressed and forsaken,

You've got a golden chance to learn

So learn and break the chains of caste.

Throw away the Brahman's scriptures fast. (pg. 66)

She outrightly criticised the hegemonic Brahmanical interpretations perpetuated in society about caste system especially in the Manusmriti.

One cannot talk of the development of Indian feminism by omitting Kamini Roy's oeuvres. Kamini Roy was the first Indian woman to graduate with honours in Sanskrit in British India. Her learned mind, progressive ideology and zealous activism for women empowerment distinguished her as a woman ahead of her times. Her poetry and writings are often seen as futuristic and the tone and ideas are resonant of the latter phase of feminism.

In her essay "The Fruit Tree of Knowledge", she openly exposes men's motive of retaining power as the reason for supporting the second-class-citizen behaviour with women:

"The male desire to rule is the primary, if not the only, stumbling block to women's enlightenment…. But the road to education for women is barred from before because they will be embroiled in domesticity and household work. One who is born blind does not pine for light. But one who has had a glimpse and then shut out of its radiance is infinitely more wretched…. They are extremely suspicious of women's emancipation. Why? The same old fear - 'Lest they become like us." (pg. 106 -107)

She became a member of Naari Samaj in 1921 and raised her voice against atrocities committed on women.In her poem titled " Thakurmar Chitti" or "The

Grandmother's letter" she posits the precarious position of women who have forgotten to be just woman given the excessive identifications with the roles of wives, daughters and sisters imposed on them, through a conversation between two generations of women, the granddaughter and the grandmother:

> *Grandmother: 'Men and Women are different from one another and are mutually complimentary. How can there be absolute equality between them?... You are a mother, a wife, a sister, the nerve-centre of home… If you get involved with the sordid business of the outside world, you will lose your feminity.'*
>
> *Granddaughter: 'The young generation does not accept the doctrine that woman's only destiny is wifehood and motherhood… nor that her only place is in the home… why should a woman be confined to home and denied her rightful place in society? … Women of to-day desire,*

without fear or inhibitions, all round self-development.' (Roy, pg.113)

In her essay "The Modern Age and the Modern Woman," Sarat Kumari Chaudharani, who was called 'Lahorini' by Rabindranath Tagore, notes the accusations the modern woman faces in the modern world. A measuring rod made out of the glorified ideals of women in the past made sweeter through the distance of time is used to constantly size up the modern woman which leads to a loss of belongingness and identity in women.

Her most celebrated story "Beloved, or Unloved?" exposes the subtle internalisation and perpetuation of patriarchal notions by women. Helene Cixous asserts in her "The Laugh of the

Medusa", that the biggest crime patriarchy has committed against women is that it has turned women against women. This is exactly what Sarat Kumari Chaudharani writes against in her story. She reveals the intense fetish of Indian mothers for a son, that they do not regard daughters as living beings or children and are sometimes filled with rage to end their lives. She delineates how women would be celebrated as a mother only if she had a son. She compares the all-inclusive love of Mother Earth to the flimsy, discriminatory love of a mother towards her son:

> *"They lay there, enveloped in their mother's love, their cares all forgotten. There was no discrimination here: their mother held all equally dear…. His wife wouldn't pick the baby up; she took it in her arms only after a lot*

of coaxing, and even then said she'd throttle it." (Women Writing in India, pg. 263, trans. by Bagchi)

She paints the younger women as more progressive, questioning relevance of the stifling customs and traditions. Perbha and Haridasi unequivocally question the reason behind celebrating a son's life when all help and support comes from daughters. But, the process of dehypnotization is definitely a time-taking process for the freer ones have still not tasted freedom. The story also enlists many stereotypes like,tall women have lesser prospects of getting married for they are treated as aesthetic objects than beings. The changing scenario of the woman question is also depicted in the story. The narrator herself is shown fond

of her daughter, but her objective observation rendered in the form of the story burdens her with the harsh realities of the world where a woman is discriminated against and her status is always subservient to that of the man.

Another trailblazer, Begum Rokeya Sakhawat Hossain paved the way for the onset of second wave of feminism through her feminist utopia Sultana's Dream.The narrator envisions a world free of the ills of patriarchy where women have a say in the social and political system. She uses the very stereotypes that had been used to suppress the woman so far to reverse the power dynamics between the mardana and the zenana. In her feminist utopian world, the men look after the kitchen and

their movements are restricted leading to a drop in crime rate infesting the society while the woman take care of the nation. Through the use of diffused humour the narrator shows ecofeminist concerns by linking the exploitation of nature to exploitation of women and drawing a scenic, verdant image of the nation under the rule of women as opposed to the war -ridden, barren, depleted nation under the rule of men and patriarchy.

This was the birth of first phase or wave of feminism in India. From 1850-1915 is called the first wave of feminism. It emulated the clarion call for basic rights of women like its western counterpart. It did not directly attack patriarchy. It snowballed the issue of women's upliftment through a reform in

education, domestic, legal and political scenario.

The second wave of feminism that spans from 1916-1945 is marked by the emergence of many feminist groups and organisations that worked for women empowerment at a larger scale,like All India Women's Conference (AIWC) and National Federation of Indian Women (NFIW).

Nationalism became closely allied to the movement of feminism in this phase. Sarojini Naidu became the first woman Governor of Uttar Pradesh and her call to freedom put the participation of women on the centre stage. Reclaiming power to women she famously claimed in her speech titled

“Education of Indian Woman” that” *“The hands that rocked the cradle is the power that rules the world,”(*Speeches and Writings of Sarojini Naidu,pg.13) At another place she is seen claiming that *“At this great moment of stress and striving, when the Indian races are seeking for the ultimate unity of a common national ideal, it is well for us to remember that the success of the whole movement lies centred in what is known as the woman question. It is not you but we who are the true nation-builders.”* (pg.11) Raising her voice against skewed and discriminatory education system that caters differently to the women she said: *“What," they cried, " educate our women “? What, then, will become of the comfortable domestic ideals as exemplified by the luscious 'halwa' and the savoury 'omelette'?" Others, again, were neither " for Jove nor for Jehovah," but were for compromise, bringing forward a whole syllabus of*

compromises. " Teach this," they said, " and not that." But, my friends, in the matter of education you cannot flay thus far and no further."(pg.12) Although she denied bearing the tag of feminism, her writings and speeches have been seminal in forging a link between Indian Nationalism and feminism calling women to action in the struggle for Independence.

Mahatma Gandhi's strong emergence on the political front garnered extensive women participation in the freedom struggle for his appreciation of feminine qualities like tolerance, sacrifice and care and patience that found a place in Gandhi's political stance of satyagrah and swaraj towards the British rule. Although one cannot deny that the hands that freed women also tied them down to

such essentialist notions of being a female which fetters the feminine psyche till date.

A significantly radical approach to the question of woman was adopted by Ismat Chughtai, an emerging face on the Urdu literary scenario. Her writing bore a mark of realism for she belonged to the Progressive Writers' Movement and her women characters were radical deviations from the accepted norm. They expressed their sexuality freely and at times also brusquely. Her ideology was based on the fact that the roles imposed on women led to a dissociation of identity with her own body. Through her writing, she metaphorically reclaimed women's right to their body and in this acceptance of the body and writing the body, she

resembled the French feminists. The short story "The Quilt" which was published in 1942, garnered a lot of critical flak for its homosexual overtones. Her stories were based in Muslim culture and milieu and she did not hesitate to expose the hypocrisy in the marriage system through the marriage of Nawab and Begum Jaan in "The Quilt". Her unflinching depiction of Begum Jaan's brimming sexuality symbolically depicted by an itch which could only be relieved by Rabbu's massage, the narrator's sexual overtures with Begum Jaan and the symbol of the quilt were quite revolutionary for its time. The characteristic features of radical feminism in her writings places her more in the post-independence era of feminism.

Literature gradually became a space where women could assert their independence and simultaneously use it as a tool to negotiate political, social and domestic space for themselves in the society too.

While it is true that many feminists outrightly contributed to the national struggle for freedom like Sarala Devi, Savitribai Phule, Sarojini Naidu and Kamini Roy, it would be amiss to belittle the efforts of many female freedom fighters who never wore the badge of feminism, but worked tirelessly for the freedom of nation and instilled strength in the feminists to pursue the woman question like Uda Devi, Rani Laxmi Bai, Matangini Hazra, Kanaklata Barua, Aruna Asif Ali, Moolmati, Lakshmi Sehgal and

many more whose efforts are equally laudable.

REFERENCES

1. Bhattacharya, M., & Sen, A. (Eds.). (2021). Talking of Power: Early Writings of Bengali Women. SAGE Publications.

2. Chaudharani, S. K. (1991). Adorer Na Anadorer? In S. Tharu & K. Lalitha (Eds.), & T. Bagchi (Trans.), Women Writing In India :600 B.C. to the Present (Vol. 1, pp. 263–274). The Feminist Press.

3. Chughtai, I. (2011). The Quilt: Stories (M. Asaduddin, Trans.). Penguin Publishers.

4. Gopal Guru. (1995). Dalit Women Talk Differently. Economic and Political Weekly, 30 (41/42), 2548–2550.

5. http://www.jstor.org/stable/4403327

6. Jotirao Phule, S. (2012). Kavya Phule (L. Dhara, Ed.; U. Mhatre, Trans.). People's Education Society.

7. Naidu, S. (1925). Speeches and Writings of Sarojini Naidu (3rd ed.). G.A. NATESAN & CO.

8. Panikkar, K. N. (1990). Culture and Consciousness in Modern India: A Historical Perspective. Social Scientist, 18(4), 3–32. https://doi.org/10.2307/3517525

9. Ray, B. (1991). Women of Bengal: Transformation in Ideas and Ideals, 1900-1947. Social Scientist, 19(5/6), 3–23. https://doi.org/10.2307/3517870

10. Roy, Kamini(1924) Thakurmar Chithi (A Letter from A Grandmother). Calcutta: Sisir Kumar Neogy.

11. Sakhawat Hossain, R. (2005). Sultana's Dream and Padmarag: Two Feminist Utopias (B. Bagchi, Trans.). Penguin Books.

12. Shinde, T. (2002). A Comparison Between Women and Men (R. O'Hanlin, Trans.; 2nd ed.). Oxford University Press.

ISBN: 978-81-951568-9-4

JAGADISH CHANDRA BOSE: A PIONEER SCIENTIST IN PRE-INDEPENDENT INDIA

Dr. Jaswinder Kaur
Assistant Professor
Department Of Botany
Dr. Ambedkar Gov P. G. College, Unchahar, Raebareli, U. P.

The last decades of 19th century and the early 20th century, witnessed a national awakening in India, in all fields, viz. literature, arts, political thought, philosophy, India

witnessed a Renaissance of sorts, when a hundred flowers bloomed, and ideas flourished. This Renaissance would lay the foundation for the Nationalist movement, that ultimately led to the freedom of India. This movement also witnessed the flourishing of scientific thought in India. Most of the Indian scientists, had to fight a twin battle, against discrimination, as well having hard to put up with outdated equipment. And yet it was in such circumstances they emerged, men like C. V. Raman, S. N. Bose, Prafulla Chandra Ray, Srinivasa Ramanujan. The patriotic fervour exhibited by several scientists in imperial India added to the spirit of the nationalist movement. And in this pantheon of greats was one man who was a league

unto himself, Acharya Jagadish Chandra Bose, one of the greatest Indian scientists of the modern era. Jagadish Chandra Bose is a patriot who realised importance of Scientific research in National Development. In this paper the life, education, resistance to British hegemony and scientific legacy of Jagadish Chandra Bose are discussed.

INTRODUCTION

Jagadish Chandra Bose (30th November, 1858 – 23rd November, 1937) was the first Indian to establish an international scientific reputation. He was a biologist, physicist, botanist and an early writer of science fiction. He pioneered the investigation of radio and microwave optics, made significant contributions to

plant science, and laid the foundations of experimental science in the Indian subcontinent. IEEE named him one of the fathers of radio science. Bose is considered the father of Bengali science fiction, and also invented the crescograph, a device for measuring the growth of plants. A crater on the moon has been named in his honour. He founded Bose Institute, a premier research institute of India and also one of its oldest. Established in 1917, the institute was the first interdisciplinary research centre in Asia. He served as the Director of Bose Institute from its inception until his death, a decade before his country achieved independence.

EARLY LIFE AND EDUCATION

On the 30th November, 1858, Jagadish Chandra was born, in a respectable Hindu family, which hails from village Rarikhal, situated in the Vikrampur Pargana of the Dacca District, in Bengal (now Bangladesh). Little Jagadish received his first lesson in a village pathshala. His father, who had very advanced views in educational matters, instead of sending him to an English School, which was then regarded as the only place for efficient instruction, sent him to the vernacular village school for his early education. After he had developed, in the pathshala, some power of observation, some power of reasoning and some power of expression through the healthy medium of his own mother

tongue, young Jagadish was sent to an English School for education.

In 1879 received his bachelor's degree from Saint Xavier's College. In 1880 was travelled to England with the intention of studying medicine. However with the encouragement of Lord Rayleigh, he decided instead to enrol in Christ's College, Cambridge to pursue Pure Science. He received B. A. degree from Cambridge and B. S. degree from London University in 1884 and was awarded the D. S. degree from London in 1896.

RESISTANCE TO BRITISH HEGEMONY

After having completed his education abroad, Bose return to

Calcutta. In pre-independent India the environment was not conducive to higher studies, much less to research. Indians were allowed only subordinate posts and even those who had distinguished themselves abroad were given less salary than the Europeans of the same grade and rank. Bose became the first Indian professor of Physics at Presidency College, Calcutta on the 7th January, 1885 and it was there he came face to face with the discrimination Indians suffered. When he was appointed as Physics professor, it was opposed by Britishers like Charles Tawney, the principal of Presidency. Fortunately there were others like the then viceroy Lord Ripon, and Professor Fawcett, economist who knew Bose well, who backed him.

Although he was appointed in Class IV of the then Bengal Educational Service, (which afterwards merged in the present Indian Educational Service), he was not admitted to the full scale of pay of the Service. The Indian professors there were paid 1/3rd of what the British professors got with comparable duties. When he discovered this, then he refused to take any salary at all for 3 years, yet continued to teach on the grounds that teaching was an honour. The government authorities yielded within a year to that particular example of what Gandhi later made famous as "active non violence". This humiliating distinction was, removed in his case, when the bureaucracy could not any longer ignore the pressure of enlightened opinion that was brought to

bear on it. The administration eventually absorbed Bose as a faculty, abolishing a two-tier pay-scale for higher-education teachers based on their nativity.

Not only this, till the Royal Society recognised Bose, the college authorities refused him any research facility and considered his work as purely private. J. C. Bose was unorthodox in one more sense. He also was not given the proper facilities for research, and he had to improvise his own equipment. He got over this by creating a makeshift laboratory at home and would pursue his research after college. Most of his salary went into his laboratory and equipment and he lived rather frugally. His research was conducted in a small 24 square feet room, in Presidency, with some rather

rudimentary equipment.

He was one of the first among the modern scientists to take to interdisciplinary research. He started as a physicist but his interest in electrical responses took him to plant physiology. To fight for a place and recognition in the scientific circles in Britain was no less difficult than fighting against the administrative absurdities of a colonial government. But, Bose persisted and his resistance won to British hegemony.

SCIENTIFIC LEGACY

In 1894, Bose for the first time gave a demonstration of microwaves at the Kolkata Town Hall, whereby he ignited gunpowder and rang a bell at a distance of using the microwaves. In 1895 he

published his findings in "On the polarisation of Electric Rays by Double Reflecting Crystals" at the Asiatic Society of Bengal, his first research paper. Within a year in 1896, one of his other papers "On the Determination of the Indices of Refraction of Sulphur for the Electric Ray" was published by Royal Society of London, and it was probably the first time, papers by an Indian were published in a Western scientific periodical. The scientific community now sat up and took notice of him, he was given the Doctor of Science degree and the British Government came forward to help him monetarily. Bose shattered the myth that only the West was good at science, while the Indians were fit only for religious and spiritual studies. The fact that Bose

managed to achieve so much with pretty rudimentary equipment, and in the face of discrimination, made his achievement, that much more remarkable.

One thing that needs to be understand, is that Bose was primarily seeking to study the nature of radio microwave optics, he was not really keen on the radio. He was the first to use a semiconductor junction to detect radio waves.

He never saw science as a means of monetary benefit, for him it was used to benefit mankind. He could easily have had made a fortune just by patenting his inventions, but he was never interested in it. This is the reason, why Marconi gets the credit for radio, though it was Bose

who actually first demonstrated its practical application. He openly laid out the design for his coherer for others to adopt, and refused to take patent for it. His philosophy was very simple, knowledge was not any one's personal property and any could use the fruits of his work.

In 1900 he bought out a paper "On the Similarity Responses of Inorganic and Living Matter" at the Paris International Conference, where he compared the responses of living tissues with inorganic matter. In a sense Bose was giving a more scientific touch to the old Eastern philosophy of the basic unity of all living beings. Swami Vivekananda who was in Paris, then, went to hear Bose at the Congress, and highly praised him for his

work. Rabindra Nath Tagore also appreciated Bose work in the form of a poem.

His major contribution to the field of Biophysics, was his demonstration of the electrical nature of stimuli in plants, to say wounds or chemical agents, which till then was assumed to be chemical in nature. He was one of the first to study action of microwaves in plant tissues, changes in the cell membrane. He also did pioneering research work in the seasonal effect mechanism on plants, effect of temperature and comparative study of fatigue response in metals as well as plants. He documented a characteristic electrical response curve of plants to stimuli as well as absence of response in plants treated with anesthetic

or poison.

One of Bose's most significant inventions was the Crescograph, an instrument that could measure the growth of a plant, as small as 1/100,000 inch per second. His pioneering work on plant stimuli would be the basis for many fields like Physiology, Chronobiology and Cybernetics.

In 1915, Bose retired as Professor of Physics, he had actually got a 2 year extension in recognition of his services. Even after retirement, the Government made him as Professor Emeritus on full pay, instead of giving him pension as per the standard practice. Bose did not give up on his research work even after retirement and kept working on it till the

end of his life. Having experienced the struggle of doing research without proper equipment, in 1917 Bose developed a fully fledged research institute and laboratory for aspiring scientists in Kolkata. For Bose the institute would be a centre for advancing original thought, where people would research, discover and then share their knowledge for the betterment of mankind.

Jagadish Chandra Bose was however more than a mere scientist, he was also a writer, an author, a polymath, a connoisseur of fine arts. He was a writer of science fiction too, and has often been called the father of Bengali Science Fiction. He wrote “Niruddesher Kahani” in 1896, a very famous short story and his

"Palatak Toophan" was one of the first works in Bengali science fiction.

In the history of science, Bose has been credited with the invention of wireless detection device as well as a pioneer in the field of biophysics. A small impact crater of 91 kilometres diameter, on the far side of the Moon is named after Bose to recognise his achievements in the field of wireless telecommunications in particular, which are said to have paved the way for the satellite communication. His work on the millimetre band radio has been recognized by IEEE as a milestone in the field of Electrical Engineering, the first time an Indian has got that honor. Today Jagadish Chandra Bose is no longer around us, physically, but his legacy shall endure forever.

REFERENCES

1. Bose, J. C. 2012 (Reprint). Jagadish Chandra Bose his life and speeches. The Cambridge Press, Madras.

2. Geddes, P. 1920. The Life and Work of Sir Jagadis C. Bose. Longmans, London.

3. Gupta, M. 1944. Jagadish Chandra Bose biography. Bharatiya Vidya bhavan, Bombay.

4. http://www.freeindia.org/biographies/greatscientists/jcbose/index.htm

5. http://www.vigyanprasar.gov.in/scientists/JCBOSE.htm